राधा रानी

पौराणिक उपन्यास

लेखक

श्रीनाथसिंह

प्रकाशक

गीता प्रकाशन

कटरा इलाहाबाद

१९५८

थम बार] [मूल्य २ रु०

प्रकाशक—
गीता प्रकाशन
कटरा, इलाहाबाद

१९५८

मुद्रक—
रामायण प्रेस
कटरा, इलाहाबाद

भूमिका

हिन्दू धर्म के अनुसार भगवान ने विष्णु और लक्ष्मी के रूप में प्रकट होकर देवताओं का मार्ग-प्रदर्शन किया। देवताओं के पश्चात् जब मानवों के भी मार्ग-प्रदर्शन की आवश्यकता पडी तो भगवान ने सीता और राम का रूप धारण किया। परन्तु कदाचित अपने उस रूप से भगवान को पूर्ण संतोष नहीं हुआ; तब उन्होंने अपने को राधा-कृष्ण के रूप में प्रकट किया।

विष्णु-लक्ष्मी की कथाओं से १८ हों पुराण परिपूर्ण हैं। सीता-राम की कथा रामायण में वर्णित है। भगवान कृष्ण की पूर्ण कथा भी भागवत व महाभारत में मिल जाती है। परन्तु श्री राधारानी का, जिन का हम रात दिन नाम रटते हैं, इन ग्रंथों में कहीं नाम तक नहीं आया।

श्री राधारानी की कथा केवल ब्रह्मवैवर्त पुराण में दी हुई है, इस पुराण की रचना हुए मुश्किल से ४०० वर्ष हुए होंगे। वह दासता और शृङ्गारी साहित्य का युग था, अतएव उसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अतिरिक्त और किसी पुराण में, यहाँ तक कि श्री मद्भागवत में भी

श्री राधारानी का उल्लेख नहीं है। तब प्रश्न उठता है कि राधा थीं भी या नहीं? और थीं तो इतनी पूज्य क्यों हुईं? इस प्रश्न का उत्तर भी इसी कथा में गूढ़ रूप में छिपा हुआ है। इन पंक्तियों के लेखक ने राधा-कृष्ण सम्बन्धी उपलब्ध समस्त साहित्य का पिछले २० वर्षों से अध्ययन करके श्री राधाकृष्ण की वास्तविक कथा को मालूम कर लिया है। वही पुनीत कथा इस उपन्यास के रूप में हिन्दी पाठकों के समक्ष प्रथम बार उपस्थित की जा रही है।

प्रयाग

१४-१०-५८

—श्रीनाथ सिंह

प्रकाशक का निवेदन

गीता प्रकाशन के नाम से हमने सर्वथा नवीन दृष्टि-कोण प्रस्तुत करने वाले लोक-कल्याणकारी ग्रन्थों के प्रकाशन की एक योजना बनाई है। और आज बड़े हर्ष और उत्साह के साथ श्री श्रीनाथ सिंह लिखित इस सर्वथा नवीन पौराणिक उपन्यास के साथ उसका श्री गणेश कर रहे हैं।

हमारा उद्देश्य हिन्दी पाठकों के समक्ष ऐसा सुरुचि पूर्ण, सुन्दर साहित्य प्रस्तुत करना है जो राष्ट्रीय जागरण और नव-निर्माण की इस वेला में भारत के आधुनिक आदर्शों और मान्यताओं के अनुरूप हो। हमें विश्वास है, हमारा यह प्रथम प्रकाशन, श्रीनाथसिंह-लिखित यह उपन्यास, जो भाई बहन पढ़ेंगे वे हमारे इस दृष्टि कोण से सहमत हुए बिना न रहेंगे।

हम अपनी इस योजना के अन्तर्गत भारत की क्षेत्रीय भाषाओं के श्रेष्ठ ग्रंथों के अनुवाद, नवसाक्षरों, विद्यार्थियों और बच्चों के लिए उपयोगी साहित्य विशेष रूप से प्रकाशित करेंगे।

हिन्दी के अनेक लब्ध-प्रतिष्ठित लेखकों, विद्वानों और शिक्षा-विशारदों से हमें सहयोग के वचन मिले हैं और हिन्दी पाठकों की सुरुचि और सद्भावना का हमें पूर्ण भरोसा है। हम अपनी इस योजना को सफल बनाने में समस्त साहित्य प्रेमी पाठकों से सहयोग और सुझाव की आशा रखते हैं।

कृष्णचन्द्र वार्ष्णेय
अध्यक्ष गीता प्रकाशन
कटरा, इलाहाबाद

विषय सूची

राधा रानी

१—जन्म

आश्रमों से विद्यार्थियों के वेद-पाठ की ध्वनि आ रही है। यह इस बात का प्रमाण है कि रात का पिछला पहर है। शीघ्र ही वेद-पाठ से भी अधिक मधुर ध्वनि गोपा के श्रवणों से टकराने लगी। यह थी चूड़ियों की खनक के साथ दधि से भरे भारी मटकों में गोपियों द्वारा मथानी फिराने की ध्वनि। पास-पड़ोस के घरों से जब ये ध्वनियाँ उठकर एक में मिलीं तब गोपा को जान पड़ा जैसे समुद्र गर्जन कर रहा हो।

ऐसे में कौन सोता है और फिर वह तो गोपी थी। गोपा उठी। गृहाङ्गण में सुप्त यज्ञ वेदी के ऊपर से राख हटाई, अरुण-वर्ण सूर्य के समान आभापूर्ण अङ्गार के दर्पण में उसने अपना

मुख देखा। एक विचित्र लोहित प्रकाश उसकी कुटीर में फैल गया। पास ही एक अरवे से वह एक मुट्ठी धूप ले आयी और अङ्गार पर उसे डाल दिया। अग्नि प्रज्वलित हो उठी। उससे एक दिन पूर्व के गरमाये हुए ताजे घृत से भरा दीप लेस कर उसने दीवट पर धर दिया। एक सप्ताह पूर्व धौरी ने जो बछड़ा जना था, वह उठ कर खड़ा हो गया और अँगड़ाई लेने लगा। गोपा निहाल हो गयी। प्रातःकालीन गृह-दीप के प्रकाश में गो-वत्स का दर्शन, दीप में जलते हुए ताजे घृत की सुगन्ध, पास-पड़ोस के घरों में उमड़ते हुए दधि-सिन्धु का गर्जन! उसके नेत्र, नासिका और श्रवण तीनों भगवान को धन्यवाद देने लगे। इससे अधिक और गोपी को क्या चाहिए? यही सब सोचती हुई गृह-कार्य में लग गयी।

तभी बाहर से आवाज आई, गोपा! आज दधि बेचने न जाना।

'कौन?'

''मैं हूँ वृषभानु।'

'कुशल तो है?'

'सब कुशल ही है। उद्धव आ रहे हैं। तुम्हारे अतिथि होंगे।'

उद्धव और मेरे अतिथि? मेरी चले तो मैं सम्पूर्ण ब्रज में इनका प्रवेश निषिद्ध करा दूँ।'

'कारण?'

'कारण पीछे बताऊँगी। पहले यह तो बताओ, कीर्तिदा कैसी हैं? मैंने तो समझा था, कुछ हुआ? और तुम जन्मोत्सव का निमन्त्रण देने आये हो?

और तुम भी लगे करने उद्धव की बात! इनसे बात करना जीवन के बहुमूल्य क्षणों को नष्ट करना है।'

'अच्छा! मैं समझा? पर वे तो अतिथि रूप में आ रहे हैं। अतिथि का सत्कार भी तो अपना एक धर्म है। सो दधि बेचने न जाना और · ।'

'बहुत ठीक! मैं समझ गयी और भगवान ने कीर्तिदा की गोद आज ही सजाई तो उद्धव से सब दिनों के आतिथ्य की कसर भी निकाल लूँगी।'

'सो कैसे?'

'कीर्तिदा के शिशु के ग्रह नक्षत्र का निर्णय उद्धव से ही करवाऊँगी। मुफ्त का चारों तरफ खाते फिरते हैं। आज इनसे काम भी लूँगी।'

'शिशु क्यों कहा? पुत्र होने में क्या तुम्हें सन्देह है?' यह यशोदा की आवाज थी।

'आओ नन्द रानी! तुम कैसे इधर निकल आयीं?'

'कल वे मथुरा गये थे। अभी तक नहीं लौटे। गायें दुहने को पड़ी हैं सो वृषभानु को बुलाने आई हूँ। वहाँ ज्ञात हुआ कि तुम्हारे घर गये हैं सो सीधे यहीं चली आयी।'

'इतने गोप गोपी छोड़ कर तुम वृषभानु से ही गायें दुहाती हो सो क्या बात है ?'

'गोप तो सब दुहेंगे ही। पर गो-दोहन के समय किसी सयाने व्यक्ति की उपस्थिति भी तो चाहिए ?'

'ठीक कहती हो यशोदा! तब तो मैं वृषभानु को एक क्षण के लिए भी न रोकूँगी। पर हाँ सुनो! उद्धव जी आज मेरे यहाँ पधार रहे हैं। उनको आज अच्छी तरह समझा देना है कि वे गोपों को न बहकावें और अपना यह माया-जाल अन्यत्र फैलावें।'

'पर वे समझें तब न ?'

'उन्हें समझना पड़ेगा। मेरी उनकी आज हार जीत की बाजी लगेगी !'

'सो कैसे ?'

'मेरी बाजी स्पष्ट है। वृषभानु के पुत्र हो तो उनकी जीत मानी जाय और वे ब्रज में रहें। परन्तु यदि कन्या हो तो मेरी जीत हो। और वे ब्रज छोड़ दें।'

यशोदा को हँसी आ गयी—'अच्छा, इसलिए तुम्हें कीर्तिदा के पुत्र उत्पन्न होने में सन्देह है ?'

'सन्देह की बात नहीं। मैं भविष्यवाणी करती हूँ। कीर्तिदा के कन्या होगी और यदि उद्धव ब्रज छोड़ न देंगे तो मैं

ऐसा मन्त्र पढ़ूँगी कि ब्रज में सब कन्याएँ ही कन्याएँ पैदा होंगी।'

'कन्याएँ ही क्यों? कन्या व पुत्र दोनों का जन्म रुक जायगा।' वृषभानु ने हँसते हुए कहा—'परन्तु कितना काम करना है। इस प्रसंग को उद्धव के आने ही पर छेड़ा जाय।'

तभी उद्धव जी ने वहाँ प्रवेश किया—'वृषभानु! तुम्हारे मुख से यह मैं क्या सुन रहा हूँ?'

'क्षमा करें गुरु देव! यह हम गोपों के आपस की चर्चा है। इसका शाब्दिक अर्थ न लें। पर आप तो सूर्योदय के पश्चात् आने वाले थे?'

'अवश्य! परन्तु कुछ पहले मैं यह सूचना देने आ गया कि आज ही ब्रज में करभाजन, शृङ्गी, गर्ग एवम् दुर्वासा भी पधार रहे हैं। सभी गोपा के अतिथि होंगे।'

'पधारें।' गोपा ने कहा।

'धन्य भाग हमारे जो एक साथ इतने ऋषि पधार रहे हैं।' वृषभानु यह कहने भी न पाये थे कि उद्धव उलटे पाँव लौट गये।

'क्यों? डर गये न उद्धव से!' गोपा बोली—'अब जरा अपनी बात का सांकेतिक अर्थ तो बताओ।'

'सांकेतिक अर्थ है, उद्धव बड़े ज्ञानी हैं, हमें उनकी बात माननी चाहिए ?'

'मानोगे ?'

'मानना ही पड़ेगा ।'

'पुत्र होगा तो उन्हें दे दोगे ?'

'देना ही पड़ेगा ।'

'कीर्तिदा के पुत्र नहीं होगा ? कन्या ही होगी ।' मैं कहती हूँ ।

'ऐसा होगा तो मैं तुम्हारे मुख में माखन मिश्री मेलूँगी, गोपा !' यशोदा बोली ।

'तैयार होकर आना ?'

वृषभानु यशोदा के साथ चले गये और गोपा खड़ी-खड़ी बिसूरती रही । ये ऋषि मुनि भी क्या हैं ? स्वयम् ब्याह करके पुत्र उत्पन्न करने में लज्जित होते हैं । पर गृहस्थों से उनके पुत्र छीनने में इन्हें लज्जा नहीं आती । माताएँ मानों इसीलिए गर्भ धारण करती हैं कि उनके पुत्र हों तो इन्हें दे दें और ये उन्हें तपस्या की धूप में सुखा कर लकड़ा बना दें । कितना बड़ा अनर्थ ये कर रहे हैं । राजा भी इनसे डरते हैं । तब इन पर रोक कौन लगावे ? अच्छा हुआ मैं विधवा हो गई । नहीं तो मेरे पुत्र होता तो मेरे शीलवान स्वामी इन्हें माँगने से अवश्य ही दे देते । तब तो मैं पुत्र वियोग से मर ही जाती ।

भावावेश में गोपा की आँखों में अश्रु विन्दु उमड़ आये। अंचल के छोर से उन्हें पोंछती हुई वह अपनी कुटी के भीतर लौट गई। बछड़े को इस प्रकार चूमा मानों उसका पुत्र हो पर ऋषियों की कुदृष्टि से वचने के लिये गो-वत्स बन गया हो।

अब प्रकाश हो गया था। घृत-दीप को उसने प्रणाम किया। फिर अञ्चल की हवा करके उसे विदा दी।

एक कलस लेकर वह दौड़ी हुई यमुना के तट पर गयी और स्वच्छ जल ले आई। उसमें गोबर घोल कर उसने कुटी की अतिथिशाला को लीपा, दधि और चावल से चौकें पूरे और कुशासन बिछा दिये।

धौरी के दो थन दुहकर और दो बछड़े के लिये छोड़कर उसे बछड़े समेत ढील दिया और कहा—'धौरी ! सन्ध्या समय चली आना। मैं खोजने न आऊँगी। हाँ, और बछड़ा आज पहली बार जा रहा है। इसे साथ रखना। हाँ, मुझे चिन्ता-ग्रस्त न होना पड़े। ऋषियों को अपने आतिथ्य से मैं तुष्ट करूँगी। तुम बेफिक्र जाओ।'

धौरी कुछ बोली नहीं। पर बछड़े समेत इस तरह चल पड़ी जैसे सब समझ गई हो।

गोपा दूसरा कलस लेकर पुनः यमुना की ओर भागी। गहरे पानी में डुबकी लगा-लगा कर स्नान किया। वरुण, विष्णु, इन्द्र,

शिव का ध्यान किया और स्वच्छ यमुना जल से भरा कलस सिर पर धारण किये पुनः अपनी कुटी में पहुँची।

क्या देखती है कि स्वच्छ लिपे हुए चौकों से पूरित अतिथि-शाला में उसके रखे हुए कुशासनों पर उद्धव समेत चारों मुनि बैठे हैं।

गोपा ने उस जल से भरे कलस को एक ओर छठवें मुनि की भाँति स्थापित करते हुए कहा—'मैं अपना धन्य भाग्य मानती हूँ जो ऐसे मुनि आज मेरी कुटी में पधारे हैं। मैं आज कृतकृत्य हो गयी।

फिर उसने एक-एक करके उन चारों ऋषियों के चरणों के निकट ले जाकर अपना मस्तक भूमि पर रखा और अन्त में उद्धव को प्रणाम करके अत्यन्त श्रद्धा विनय पूर्वक बैठ गयी।

'हम लोग क्यों आये हैं? गोपा! जानती हो?' करभाजन ने प्रश्न किया।

'वृषभानु की पत्नी कीर्तिदा रानी के आज कन्या उत्पन्न होने वाली है, उसी के ग्रह-नक्षत्र का निर्णय करने?'

'कन्या से हमसे कोई प्रयोजन नहीं?' शृङ्गी ऋषि बोले।

'हम ब्रजवासियों को तो है।' गोपा ने विनय पूर्ण स्वर से कहा।

'यह तो ठीक है। परन्तु क्या तुम लोग चाहते हो कि योगाभ्यास की क्रिया और विद्या का अन्त हो जाय?' गर्ग ने पूछा।

'हमें योग से कोई प्रयोजन नहीं।' गोपा का संक्षिप्त उत्तर था।

'तुम स्त्री हो न ? तुम्हें योग से प्रयोजन न होना चाहिए। पर हम पुरुषों को तो है ?' दुर्वासा बोले।

'तब पुरुष से पुरुष क्यों नहीं उत्पन्न कर लेते ? स्त्रियों से उनके दुध मुँहे बच्चों का क्यों अपहरण करने आते हो ?' गोपा बोली।

'अपहरण !' उद्धव बोले—'किसी से कोई वस्तु दान में लेना अपहरण नहीं है। वृषभानु ने मुझसे कहा था कि उनकी पहली सन्तान पुत्र होगी तो वे मुझे देंगे। मैंने साधना की ब्रह्मा को प्रेरित किया कि उन्हें सन्तान दे।'

'कितने स्वार्थी हैं आप !'

वृषभानु ने हमसे एक वादा किया था, उसके पूरा करने का समय आया तो हम स्वार्थी हैं ? धन्य है, गोपा !'

'विवाद हम नहीं चाहते ?' करभाजन बोले—'गोपा हम यह चाहते हैं कि वृषभानु के पुत्र उत्पन्न हो और वे हमें दें तो तुम बाधा मत डालना।'

'स्वीकार है। परन्तु यदि कन्या उत्पन्न हो ?'

'हम उसे आशीर्वाद देकर चले जायेंगे।' दुर्वासा ने कहा।

'धन्य हो मुनि ! धन्य हो !!' गोपा उन सब के चरणों के निकट बार-बार मत्था टेकने लगी।

फिर वह उठी और दौड़ी हुई दूसरे कक्ष में गई, दूध, दधि, घृत, मिश्री, मेवा सबको एक में मिला कर पंचामृत बना लाई और काठ के पात्रों में उन सब के सम्मुख उपस्थित किया।

परन्तु यह क्यों? वे चारों ऋषि उद्धव समेत इस प्रकार ध्यान मग्न हो गये थे जैसे निर्जीव प्रतिमाएँ हों! गोपा को लगा कि उनके शरीर मात्र उसकी कुटी में रह गये हैं और उनकी आत्मा ब्रह्मलोक में चली गई हैं।

मुनिवरो यह योग विद्या का दुरुपयोग है। तुम ब्रह्मा को इस बात के लिए प्रेरित करने गये हो कि वह वृषभान को पुत्र ही दे! अच्छा योग तो मैं नहीं जानती। पर मैं भी एक सती नारी हूँ। मेरी टेक है कि वृषभानु पत्नी कीर्तिदा के गर्भ से कन्या ही उत्पन्न हो। प्रभो! मेरी टेक रखो। प्रभो! मेरी टेक रखो। प्रभो! मेरी टेक रखो। वह अपने कुटीर के आँगन में खड़ी होकर शून्य आकाश को देखती हुई जोर-जोर से पुकारने लगी।

इस प्रकार घंटों बीत गये।

सहसा गोपों के डफ, मृदंग और करताल बज उठे। यह मधुर ध्वनि कानों में पड़ी तो वह दौड़ी हुई वृषभानु के भवन की ओर गई।

'कन्या ही ने जन्म लिया है न?' वह द्वार पर से ही चिल्लाई।

भीतर जाकर देखा कि कीर्तिदा देवी पलंग पर लेटी हैं। बगल में नव विकसित अरुण कमल दल के समान उस नव जात कन्या को वात्सल्य भरी दृष्टि से देख रही हैं। सिर हिला कर, मन्द स्मित के साथ उन्होंने संकेत किया जिससे गोपा समझ गई कि कन्या ने ही जन्म लिया है।

सारे ब्रज में यह समाचार फैल गया और चारों तरफ से दौड़ते हुए गोप गोपी वृषभानु को बधाई देने के लिए आने लगे।

परन्तु इस हर्षोल्लास की मधुर घड़ी में गोपा वहाँ खड़ी भी न रह सकी। उसके घर में पूज्य अतिथि जो विराजमान थे। वह दबे पांवों उनके समीप आई। देखा कि वे अपने-अपने आगे कठौतों में रखा पंचामृत ग्रहण कर रहे हैं।

गोपा मोर पङ्ख लाकर उन्हें झलने लगी।

पंचामृत खाकर ऋषियों ने आचमन किया और अपने आसन पर पुनः बैठने ही जा रहे थे कि देखा कुटीर के द्वार पर हाथ जोड़े वृषभानु खड़े हैं?

'अन्दर आइये वृषभानु जी?' उद्धव ने कहा।

'गुरुदेव हमें अन्दर न बुलावें। द्वार पर बहुत से लोग जमा हैं। सबकी इच्छा है कि आप मुनिवरों के सहित वहीं पधारें और कन्या को आशीर्वाद दें।

'हाँ, यह काम तो हमें करना ही है।' करभाजन ने कहा और वे उठकर खड़े हो गए। उनके पश्चात् शृंगी, गर्ग, दुर्वासा और उद्धव उठे।

वृषभानु के द्वार पर ढोल, पखावज, कर्ताल, डफ बज रहा था गोप गोपियाँ नृत्य गान में तल्लीन थे।

मुनिवरों के पहुँचते ही नृत्य संगीत एक ताल के साथ बन्द हो गया।

'महामुनि करभाजन, शृंगी, गर्ग और दुर्वासा पधार रहे हैं।' गोपा चिल्लाती हुई आगे बढ़ रही थी। नृत्य गान से शिथिल गोप गोपियों ने दो कक्षों में विभक्त होकर उन्हें रास्ता दिया और एक स्वर से उनकी जय जय-कार करने लगे।

'वृषभानु ने पहले से निश्चित आसन पर उन्हें बैठाला। कीर्तिदा ने स्वयं उनके समीप आकर उन्हें प्रणाम किया और कन्या उनके सामने एक नीला वस्त्र खंड बिछाकर उस पर लिटा दी। ऐसी सुन्दर नवजात मानव शिशु गोप गोपियों ने तो क्या उन ऋषियों ने भी कभी न देखा था। उसकी सुन्दरता का वर्णन हम क्या करें?

करभाजन ने कहा—'आज सोमवार भाद्रपद शुक्ल पक्ष है। कन्या के जन्म के समय सूर्य मध्याकाश में थे। ज्योतिष की दृष्टि से कन्या जन्म के लिए यह सर्वोत्तम मुहूर्त है।'

गोपा ने पूछा—'महामुने यह कन्या किसका औतार है?'

करभाजन बोले—'यह स्वयं परमात्मा का एक रूप है, इससे अधिक हम और क्या कहें। मानव के इतिहास में आज तक ऐसी कन्या उत्पन्न नहीं हुई और थोड़ा ध्यानावस्थित होने के बाद बोले कदाचित न होगी।

'इसका भविष्य ?'

'उज्जवल है।' श्रृंगी ऋषि बोले।

चारों ऋषियों ने अपने खुले करतलों से कन्या के ऊपर छाया सी करके उसे आशीर्वाद देकर जाने लगे तभी रानी कीर्तिदा ने एक प्रश्न कर दिया—'भगवन्! इसका नाम क्या रखूँ?'

'कीर्ति कुमारी।' गोपों में से कोई बोल उठा पर ऋषियों में से किसी ने उधर ध्यान नहीं दिया। वे कन्या के भावी गुण और कर्म के अनुसार उसका नाम सोच रहे थे।

बहुत सोच विचार करने के बाद उन्होंने 'राधा' नाम रखने की सलाह दी। राधा इसलिए कि राकार दान वाचक है और धा निर्वाण का बोधक है। इस नाम को माता पिता ने स्वीकार कर लिया।

यह दो अक्षर का छोटा सा नाम गोपों को भी बहुत पसन्द आया। और उन्होंने ऋषियों की एक बार फिर जय जयकार की।

इसके बाद ही ऋषिगण चले गये। उनके जाते ही गोपों ने अपना नृत्य गान फिर प्रारम्भ किया।

इस बार गोपियाँ बड़े बड़े कलसों में वृषभान के घर से दूध भर कर निकलीं और नाचती गाती हुईं यमुना की ओर चलीं।

कलस उनके सिरों पर इस तरह रखे थे जैसे उनके शरीर के अंग हों। वे उनके हाथों का सहारा न पाने पर भी न छलकते थे न गिरते थे। श्यामल हरियाली के बीच से होती हुई एक के पीछे एक वे इस तरह चली जा रही थीं जैसे श्यामघन में विद्युत की चंचल रेखा खिंचती जा रही हो। उनके हाथ कभी दोनों एक में मिलकर प्रणाम की मुद्रा बनाते थे, कभी भूमि का स्पर्श करते थे, कभी गगन में उड़ते पक्षी के पंख के समान फैल जाते थे और कभी दीप शिखाओं की भाँति ऊपर को उठे प्रतीत होते थे। पैर जैसे पृथ्वी पर पड़ते ही न थे।

यमुना के किनारे पहुँच कर वे उसी प्रकार नृत्य करती गहरे जल में धँसती गईं और दूध से भरे घड़ों को ताल और लय के साथ यमुना जल में उड़ेलने लगीं। नील सलिला यमुना की धार में श्वेत दूध फैलकर इस तरह बह चला कि प्रयाग में गंगा यमुना के संगम का स्मरण दिलाने लगा।

प्रत्येक शुभ अवसर पर यमुना में इसी प्रकार घड़ों दूध चढ़ाया जाता था परन्तु आज तो इसका ठिकाना न था। राधा के जन्म पर इतना हर्ष मनाया गया कि इतना ब्रज में पहले किसी पुत्र या कन्या के जन्म पर न मनाया गया था।

इसी आनन्दोत्सव में शाम हो गई और यह कार्य समाप्त हुआ। गोपा अपने घर आई देखा उद्धव बैठे हैं।

'आप नहीं गए ?'

'आज तो जाने का विचार नहीं है।'

'परन्तु मुनिवर ! रात्रि में मेरी कुटी में आप कैसे रह सकते है ?'

'क्यों क्या हुआ ?' आज रात भर जाग कर मैं तुम से योग की बात करना चाहता हूँ।'

'महाराज एक तो मुझे योग से रुचि नहीं है। दूसरे रात्रि में पर पुरुष को मैं अपनी कुटी में स्थान नहीं दे सकती।'

'मैं साधक ब्रह्मचारी हूँ गोपा और तुम महासती हो।'

'सो तो ठीक है। पर हमारा लोक व्यवहार स्त्री को पर पुरुष के साथ इस प्रकार एकान्त निवास की आज्ञा नहीं देता।'

'यह सब मैं भी समझता हूँ गोपा। परन्तु तुमने मेरा जो अनिष्ट किया है, मैं चाहता हूँ तर्क से तुम्हें उसका ज्ञान कराऊँ और तुम मुझसे क्षमा माँग लो।

'नहीं तो ?'

'मेरे मन में कुभाव बना रहेगा और तुम्हें श्राप दूँगा।'

'बड़े आए श्राप देने वाले ?'

'अच्छा तो मैं तुम्हें श्राप देता हूँ। तुम्हारा सतीपन का गर्व चूर होगा और तुम्हारा बड़ा उपहास होगा।'

'अपनी हार का तुम इस प्रकार बदला लेना चाहते हो ?

'कैसी हार ?'

'वृषभानु के पुत्र होगा कहते थे न। हुआ ?'

'यह तो संयोग की बात है। दो में एक तो होता ही। मुझे इससे दुख नहीं।'

'पर बाजी तो हार गए? अब तुम्हें ब्रज छोड़ना है?'

'ब्रज?'

'हाँ।'

'ब्रज तो मैं अभी नहीं छोड़ सकता?'

'खैर, मेरी कुटी तो छोड़ो?'

'इस समय नहीं छोड़ सकता।'

'तो मर्यादा का उपाय बताओगे?'

'यह विचारणीय है। अच्छा तो लो। रात भर के लिए मरा जाता हूँ।'

उद्धव का शरीर भूमि पर इस प्रकार लुढ़क गया जैसे बाण लगने से मनुष्य गिर जाता है। गोपा दौड़ी हुई आई। अरे! उद्धव तुमने यह क्या किया? उनकी नाड़ी स्पर्श की। बन्द थी। हृदय पर हाथ रखा। गतिहीन था। नासिका दबाई। स्वांस का नाम न था।

'हाय अब मैं क्या करूँ किसको बुलऊँ'? गोपा बड़े सोच में में पड़ गई।

———

२—उद्धव का आशीर्वाद

गोपा के घर में उद्धव योग-निद्रा में पड़े हैं। यह समाचार सारे ब्रज में फैल गया है। उन्हें देखने के लिए चारों तरफ से गोप-गोपी दौड़े आ रहे हैं। जिस योग की चर्चा से गोपा बचना चाहती थी, वही मानों साकार रूप में उसके सम्मुख आ उपस्थित हुई है। वह कितना ही चाहती है कि इन समस्त विचारों को मन से निकाल दे और वृषभानु के घर में जाकर राधा-जन्म के उत्सव में सम्मिलित हो। पर जिसकी कुटी में एक तपस्वी मृतवत् पड़ा हो और उसको देखने और उसके सम्बन्ध में पूछ-ताछ करने अनेक लोग-लुगाई चले आ रहे हों वह अपनी कुटी छोड़ कर कैसे जाय ?

गोपा वहीं गेह की डेहरी पर बैठ गई। ऐसे ही वह उस दिन बैठी थी जब उसके स्वामी का स्वर्गवास हुआ था। सिर नीचा किये हुए चिन्तामग्न। पर उस दिन जो आते थे, उस पर अपनी समवेदना और सहानुभूति के आँसू ढरकाते थे जिससे उसके दुःखी मन को धीरज प्राप्त होता था। परन्तु आज कोई उससे सहानुभूति न दिखलाता था। उल्टे सब प्रश्न करते थे—'गोपा तुमने यह क्या किया ? तपस्वी उद्धव को तुमने इतना कष्ट क्यों पहुँचाया ?' और गोपा बेचारी क्या कहती ? उसे

उद्धव पर क्रोध आ रहा था। वह सोचती थी कि शव तुल्य पड़े उद्धव को टाँग पकड़ कर घसीटती हुई घर के बाहर निकाल दे, जहाँ लोग निर्विघ्न इनकी योग-लीला देखें और जो कुछ पूछना हो उन्हीं से पूछें।

परन्तु अतिथि के प्रति ऐसा कठोर व्यवहार करने का उसका साहस न हुआ। डेहरी पर बैठी-बैठी वह योग-विद्या के बारे में विसूरने लगी। योग-विद्या में पारंगत अनेक योगियों द्वारा दिखाये गये अनेक चमत्कारों की कथा उसने सुनी थी। उन सब पर उसने कभी विश्वास न किया था। परन्तु आज योग का एक छोटा-सा चमत्कार उसके सामने था। एक योगी उसकी कुटी में मृतवत् पड़ा था। उसने अपनी हृदय-गति रोक ली थी और श्वास लेना बन्द कर दिया था। गोपा ने स्वयम् अपनी सांस रोकने की चेष्टा की। पर सांस रोक कर जल्दी-जल्दी गिनती हुई भी वह अस्सी से अधिक न गिन सकी और लाख चेष्टाएँ करने पर भी वह अपनी हृद्गति न रोक सकी। आज प्रथम बार उसके सामने एक ऐसे योगी का शरीर पड़ा था जिसने अपने प्राण को दूर देश में न जाने कहाँ भेज दिया था।

उसका ध्यान फिर उद्धव की ओर गया। वे इस प्रकार पड़े थे जैसे गाढ़ी निद्रा में हों, जैसे किसी नशे में बेहोश पड़े हों। गोपा सोचने लगी, आखिर इससे लाभ क्या है? इसका प्रयोजन क्या है? और सब मनुष्य ऐसा ही करने लगें तो संसार कैसे चले? कृषि और गोपालन कौन करे? और इन कार्यों के बिना जन का कल्याण कैसे हो? गोपा इसी निर्णय पर पहुँची कि योग

की क्रियाओं द्वारा शरीर को गहरी निद्रा में डाले रहना सोमरस पी कर बेहोश पड़े रहना एक ही बात है। सौ वर्ष सो-कर बिताने से एक वर्ष जाग कर बिताना अच्छा है। उद्धव तुम हमें उपदेश देने चले हो, पर सोचो कि तुम्हें स्वयम् उपदेश की आवश्यकता है। योग कितनी ही बड़ी साधना क्यों न हो, गोपालन उससे श्रेष्ठ कर्म है। तुम जागो मैं तुमसे विवाद करने के लिये प्रस्तुत हूँ।

परन्तु गोपा को उत्तर कौन दे। उद्धव ने तो उसके ये तर्क सुने भी न होंगे। वह फिर सोचने लगी, ओफ! उद्धव तुम एक अबला पर अपना प्रभाव जमाने आये हो। परन्तु तुम्हारा रंग यहाँ किसी पर न चढ़ेगा? किसे फुरसत है, तुम्हारी यह······।

वृषभानु के द्वार से नगाड़े के एक दम बज उठने की ध्वनि उसके कान में पड़ी और उसकी यह विचार लड़ी जहाँ की तहाँ टूट कर बिखर गयी। यह निशाकालीन नृत्य-संगीत के प्रारम्भ होने की सूचना थी। गोपा के रोम-रोम पुलकित हो उठे और वह थिरक उठी। उद्धव को देखने के लिये गोप-गोपियों का जो दल उमड़ा था वह नगाड़े की एक चोट के साथ ही विलीन हो गया। सब नृत्य-गान में सम्मिलित होने चले गये थे। अब वहाँ रह गई थी केवल गोपा और उद्धव। निशाकाल में उद्धव को इस प्रकार मृतवत् पड़े देख कर गोपा डरने लगी। उसके मन में आया कि उद्धव को जहाँ का तहाँ छोड़ कर वह वृषभानु के मन्दिर में चली जाय पर उद्धव उसके यहाँ अतिथि रूप में

उपस्थित थे। अतिथि को अकेला छोड़ कर जाना या उसकी उपेक्षा करना गृहस्थ धर्म से च्युत होना था। सो गोपा फिर डेहरी पर बैठ कर बिसूरने लगी कि वह योगी से क्यों उलझी? वृषभानु की बला उसने अपने सिर पर क्यों ली? न तो वह अपने कुटीर के भीतर जा सकती थी क्योंकि उसे भय लगता था और न अपना कुटीर छोड़ कर वृषभान के द्वार पर जा सकती थी क्योंकि घर में अतिथि सोये थे।

नगाड़े की चोटों के साथ गोपा डेहरी पर बैठे-बैठे पाँव पटकने लगी और अन्त में वह उठ खड़ी हुई। अपने ही द्वार पर नृत्य करने लगी। उद्धव का प्राण चाहे जहाँ चला गया हो, गोपा का प्राण वृषभानु के मन्दिर में होने वाले संगीत में समा गया था और जैसे वहीं से उसके शरीर को परिचालित कर रहा था। यही योग है, गोपा ने तर्क किया। मन को वांछित कार्य में पूर्ण रूप से लगा देना ही योग है। उद्धव देखो, योग इसे कहते हैं।

उद्धव सुप्त पड़े हुए थे और गोपा नृत्य-रत थी। पर दोनों का मन और प्राण उस स्थान पर नहीं था। दोनों ही मानों योग की दो मुद्राएँ थीं। इन दोनों मानव शरीरों को इन दो मुद्राओं में देख रही थी धौरी और उसका बछड़ा जो आज देर से चर कर आई थी। धौरी ने नृत्य करती हुई गोपा को सूँघा और फिर मृतवत् पड़े उद्धव को सूँघा और अपने स्थान पर जाकर

खड़ी हो गयी। उसके पीछे उसका बछड़ा भी उसी प्रकार दोनों को सूँघता हुआ कुटीर के भीतर चला गया।

धौरी अपने थन में कुछ दूध गोपा के लिए बचा कर लाई थी और इस प्रतीक्षा में खड़ी थी कि गोपा अपना दूध निकाल ले तो वह विश्राम करे। पर गोपा का उधर ध्यान न था। धौरी कुछ क्षण तो इधर उधर सिर डुलाती रही पर गोपा उसके पास न गयी तो वह चिल्लाई।

धौरी की पुकार सुन कर गोपा के नृत्य-रत पग जहाँ के तहाँ रुक गये। प्रेम से उसके बछड़े को .चुमकारती हुई वह कुटी के अन्दर चली गयी। धौरी आ गयी थी तब उसे मानों कुछ डर न था।

उसने सँझाबाती दी, अहरे में पका हुआ दूध दही की मटकी मे उँडेला और जामन डाला। फिर दूध की मटकी को यमुना जल से धो साफ करके अहरे की अग्नि प्रज्वलित करके उसे गर्माया। दोहनी में धौरी का दूध दुहा और उसे गर्मायी हुई मटकी मे रात भर पकने के लिए अहरे में धर दिया। धौरी को उसका रोटी का हिस्सा जो दिन को बचा कर रख दिया था, खिलाया और कहा—'धौरी अब तुम विश्राम करो।' फिर उसने बछड़े को बार-बार चूमा और उसके आगे के पैरों को मोड़ कर बैठाया। बछड़ा बैठ गया। धौरी भी बैठ गयी।

तब गोपा का ध्यान रसोंई की ओर गया और उसके मानस पटल पर पुनः उद्धव का मृतवत् शरीर खचित हो गया। घर में

भूखा अतिथि पड़ा हो तो वह स्वयम् क्या पकावे और क्या खाय ? ओह ! उद्धव तुमने एक अबला गोपी को कैसे संकट में डाल दिया है। अस्तु आज इस कुटीर में मन चाहा विश्राम कर लो। आगे अब कभी तुम्हें इस कुटीर के अन्दर पाँव न धरने दूँगी। कुछ भी हो, जग कुछ कहे।

धौरी के पास ही वह कुटीर के आंगन में बैठ गयी और प्रातःकाल के आने की प्रतीक्षा करने लगी। इस प्रकार बैठे बैठे वह ऊँघने लगी। अर्ध सुप्तावस्था में कभी बीते दिन उसके सामने साकार होते, कभी उद्धव उससे कुछ कहते प्रतीत होते और कभी वृषभानु के गृह से आती हुई नृत्य संगीत की लहरों पर वह बोझिल नौका-सी डगमगाती।

इस प्रकार उद्धव ने ब्रह्मानन्द में और गोपा ने शान्ति-विहीन निद्रा में वह रात काटी। आश्रमों से वेद पाठ की ध्वनि जब आने लगी और ब्रज के गाँवों में दधि-सिन्धु का गर्जन सुनाई पड़ने लगा तब गोपा जैसे कैद से छूटी। वह सदा की भाँति अपने गृह-कार्य में लग गयी। और मन ही मन सोचने लगी कि उद्धव को उसने व्यर्थ इतना कष्ट पहुँचाया। उद्धव के प्रति उसका क्रोध कम हो गया था और वह अपने कटु व्यवहार के लिए संकुचित होती जा रही थी। संध्या के बढ़ते हुए अन्धकार में उसके सामने जो तर्क उठे थे वे उलूक और चमगादड़ के समान अब ऊषा काल की लाली देखते ही भाग खड़े हुए थे और गोपा के सामने सूर्य के समान यह तर्क उदित हो रहा

था कि अपना मन स्वस्थ और शुद्ध हो तो स्त्री चाहे जिसके साथ चाहे जैसे एकान्त में रह सकती है। उसका कोई अनिष्ट नहीं हो सकता। अब वह लाज से गड़ी जा रही थी। हाय! वह उद्धव से क्या कहेगी?

ग्लानि से मस्तक नत किए हुए क्षमा-याचना के निमित्त वह उद्धव के निकट आई। उसने उनके मस्तक पर हाथ रखा, वह गर्म था। उनकी नाड़ी देखी, उसमें गति थी। उनकी नसिका पर हाथ रखा, प्रश्वास-क्रिया आरम्भ हो गई थी। वह दौड़ी हुई एक गड़ुवे में जल ले आई। उसने उद्धव के मुँह पर छींटे मारे और अपने अंचल से उनका मुख पोंछा। उद्धव ने आँखें खोल दीं।

'गोपा! तुम, एक सती नारी होकर, इस ब्रह्म मुहूर्त में पर पुरुष का स्पर्श कर रही हो?' उद्धव ने कहा।

'उद्धव! तुम महाऋषि होकर इस ब्रह्म मुहूर्त में मातृ-स्नेह से सिक्त नारी के स्पर्श का अनादर कर रहे हो।' गोपा ने इस तरह उत्तर दिया जैसे कोई चतुर खिलाड़ी अपनी ओर आने वाली गेंद को तत्काल विपक्षी की ओर ठुकरा देता है।

'कल संध्या को तुम्हारा मातृ-स्नेह कहाँ चला गया था?'

'यह भी आप जैसे त्रिकाल-दर्शी मुनि को बताना होगा?'

'हाँ, मुझे समझाओ! मुझे लगता है कि तुम्हारे निकट मैं बच्चा ही हूँ।'

गोपा ने कहा—'मुनिवर चूक क्षमा करें ? दिन भर के श्रम से थका मन रात्रि के प्रथम प्रहर में उस प्रकार नहीं सोच सकता, जैसा ब्रह्म मुहूर्त में सोचता है। कल सन्ध्या समय में प्रसाद वश बहुत कुछ कह गई जो मुझे न कहना चाहिए और आपको व्यर्थ कष्ट पहुँचाया। अब उसके लिए पछताती हूँ। क्षमा करें।'

'गोपा मुझे दुःख है कि मैं तुम्हें श्राप दे चुका हूँ।'

'क्या ?'

'एक दिन आयेगा जब तुम्हारा सतीपन का गर्व चूर होगा ?'

'इसे मैं श्राप नहीं मानती ! इसे मैं और भी कठोरता के साथ स्वधर्म पालन का संकेत मानती हूँ पर खैर ! यह श्राप देने के बाद आपके मन में मेरे प्रति और तो कोई कुभाव नहीं रह जाता ?'

'कुछ भी नहीं।'

'महामुनि' मैं आपको धन्यवाद देती हूँ कि आपने मेरे अपराध का मुझे छोटा-सा दण्ड देकर छोड़ दिया। अब मेरा एक आग्रह स्वीकार करें।'

'कहो ?'

'कृपा पूर्वक बतावें कि योग क्या है ? इसका क्या प्रयोजन है ? आप हम गोपों को योग की ओर क्यों ले जाना चाहते हैं ?'
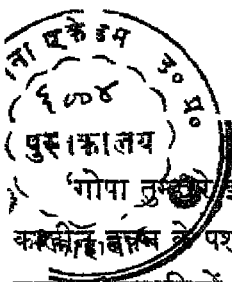
'गोपा तुम्हारे इस आग्रह से मैं बहुत प्रसन्न हूँ। आज प्रात. कालीन हवन के पश्चात् मैं इस विषय पर प्रवचन करूँगा। तुम समस्त ब्रजवासियों को सूचित कर दो।'

'जो आज्ञा महाराज।'

एक दिन पूर्व गोपा ने उद्धव को जो कष्ट पहुँचाया था उसके प्रायश्चित् स्वरूप वह तत्काल इस शुभ कार्य में लग गई। आस-पास के सभी गाँवों में वह सन्देश दे आई कि आज गाँव के हवन में उद्धव भी सम्मिलित होंगे। सन्देश पाते ही गोपगण घृत और कृषक-गण अन्न ले-लेकर पहुँचने लगे, इधर उद्धव भी स्नान आदि से निवृत्त होकर गाँव की यज्ञ-शाला में जा पहुँचे।

जब की कथा हम लिख रहे हैं, भारतवर्ष में यज्ञों का अत्य-धिक प्रचलन था। गाँव-गाँव में यज्ञशाला थी और लोग अन्न और घृत का प्रति दिन हवन करते थे, यहाँ तक कि धुएँ का बादल छा जाता था। यह देवों के देव इन्द्र की पूजा का एक रूप था। प्रत्येक गाँव में सामूहिक यज्ञ की वेदी अलग होती थी और प्रत्येक गृहांगण में व्यक्तिगत यज्ञ की वेदी अलग। संभ-वतः उन दिनों भारतवर्ष में अन्न और घृत इतना होता था कि इस प्रकार यज्ञों के द्वारा उनका विनाश एक पवित्र कर्म समझा जाता था। बड़े-बड़े यज्ञों का महत्व इस बात में था कि तब तक यज्ञ करते चले जाओ जब तक इन्द्र जल वृष्टि करके यज्ञ की अग्नि को बुझा न दें। ऐसा होने पर समझा जाता था कि इन्द्र ने पूजा स्वीकार कर ली।

पाठक आइये ! अब हम उद्धव के साथ गोपा के गांव की यज्ञशाला में चलें। उद्धव ने यमुना में स्नान करके सम्पूर्ण शरीर में भस्म लपेट लिया है, उनके कटि प्रदेश पर मृग चर्म सुशोभित है; जल से भीगी और भस्म से अभिलिप्त लम्बी जटाएँ उनकी एड़ी तक पहुँच रही हैं। उनकी दाढ़ी के लम्बे बाल एक में बटे हुए नाभि तक इस प्रकार पहुँच रहे हैं जैसे वट की किसी शाख से जटा निकल कर तने पर छा गई हो। उनके एक हाथ में स्वर्ण निर्मित कमंडल और दूसरे में रजत-दंड है। उनके पीछे गोपा है जिसने अपने काले केशों को मोतियों की लड़ी से सवार रखा है, वक्षस्थल पर पीतवर्ण रेशम के महीन तारों की कचुकी है और कटि से घुटनों तक स्वयम् उसके हाथ से काते हुए सूत का श्वेत कटि-परिधान है। कंचुकी और कटि-परिधान के बीच का खुला हुआ सुघटित नाभि प्रदेश सुप्रवाहित सरिता के भँवर-सा सुशोभित है। उसके विशाल नेत्र कज्जल और हाथ-पांव के तलवे मेंहदी से सुशोभित हैं। गोपा विधवा है, परन्तु आजकल की विधवाओं की भाँति वह शृङ्गारवञ्चिता नहीं है। उसके मानस-पटल पर उसके पति का स्वरूप खचित है, उसके स्मृत-भवन में उसका स्वामी आज भी सजीव है। उसका विश्वास है कि उसके स्वामी का प्राण देह की दूरी को असह्य समझ कर उसी के प्राणों से समा गया है और उसी के शरीर में निवास कर रहा है। इसीलिए वह नित्य नूतन शृंगार करती है और दर्पण में अपनी छवि देख कर अपने ही पर विमुग्ध होती है।

ऐसी है गोपा और ऐसे हैं उद्धव जो ब्रजवासियों के मनों में प्रेम और श्रद्धा उत्पन्न करते हुए गाँव के बीच से चले जा रहे हैं। यज्ञ-शाला पूर्व की ओर यमुना के किनारे ऊँचे कगारे पर है और लोगों की भीड़ दूर से ही दिखाई पड़ रही है। याज्ञिक लोग यथा-स्थान बैठ गये हैं। गोपियाँ उन्हें घेरे इस तरह खड़ी हैं जैसे स्वर्ग की अपसरायें पृथ्वी पर उतर आई हैं। उजले वस्त्रों में गोपों की भीड़ दूर ही से इस तरह दिखाई पड़ रही है जैसे कांस का खेत खिला हो।

एक विचित्र शान्त और उल्लास का वातावरण है। उद्धव के गोपा समेत निकट पहुँचते ही वेदी के चारों ओर बैठे बलक्ल धारी याज्ञिकों ने खड़े होकर उनका स्वागत किया और दोनों हाथ जोड़ कर मस्तक झुका कर उनको प्रणाम किया। पहले से सुनि-श्चित रिक्त स्थान पर उद्धव जा बैठे। गोपा अन्य गोपियों के बीच में चली गई। हवन आरम्भ हो गया। वेद मन्त्रों की गम्भीर ध्वनि के साथ प्रज्वलित कुण्ड में अन्न और घृत डाला जाने लगा। धुएँ का बादल उठ कर दूर तक फैल गया।

लगभग १ घंटे तक इस प्रकार हवन होता रहा अन्तिम आहुति के साथ ही नगाड़े बज उठे और गोपियाँ वेदी के गिर्द छोड़े हुए वृत्ताकार मार्ग पर थिरक उठीं। एक विचित्र मुद्रा बना कर आँखें बन्द किये हुए, मस्तक झुकाये हुए, हाथों को जोड़े हुए उन्होंने इन्द्र देव को नृत्य करते हुए प्रणाम किया और जिज्ञासु-भाव से बैठ गयीं। अब उद्धव ने अपना चिर अभिलाषित प्रवचन आरम्भ किया।

वे कहने लगे। हे गोपियो! मानव जीवन के लिये योग ही अवलम्ब है। शेष सब स्वप्नवत् मिथ्या और असार है। योग का अर्थ है—एकीकरण : जीव का ब्रह्म के साथ। जीव ब्रह्म के वियोग में उसे खोजता हुआ नाना प्रकार की योनियों मे जन्म लेता भटकता फिरता है पर उसे पाता नहीं। अन्त में जब वह मानव योनि में जन्म लेता है तब उसे ब्रह्म में लीन होने का अवसर मिलता है। परन्तु इतना भटक चुकने पर वह अपने को इतना भूल जाता है कि सांसारिक सुखों को ही सब कुछ समझ बैठता है। स्मरण रखिये कि मानव तन बड़े पुण्य के पश्चात् प्राप्त होता है और एक बार मानव तन प्राप्त होने पर इससे लाभ न उठाया गया तो दुबारा मानव तन प्राप्त होने का अवसर जल्दी नहीं आता। जीव के लिये सबसे बड़ा आनन्द ब्रह्म में विलीन होना है। यही ब्रह्मानन्द है। इसी की प्राप्ति के साधन का नाम योग है। योग अर्थात् जोड़ अथवा मिलन आत्मा का परमात्मा से।

इस प्रकार योग की परिभाषा बता चुकने के बाद उद्धव पुनः कहने लगे। हे गोप गोपियो! अब मैं तुमसे बताता हूँ कि योग का प्रयोजन क्या है? ध्यान से सुनो। ब्रह्म का दूसरा नाम ज्ञान है। या यह कहो कि ब्रह्म ही ज्ञान है। ब्रह्म को प्राप्त करना ज्ञान को प्राप्तः करना है। योग का प्रयोजन है साधना द्वारा ब्रह्म अर्थात् ज्ञान को प्राप्त करना और उसे मानव समाज में वितरित करना, योगियों के आश्रम इसी ब्रह्म अर्थात् ज्ञान की प्राप्ति और वितरण के केन्द्र हैं। किसी भी प्रकार का ज्ञान प्राप्त करना योग

की साधना का एक रूप है। कृषि, गोपालन का ज्ञान प्राप्त करना भी योग ही है। परन्तु कृषि या गोपालन ही ज्ञान की चर्म सीमा नहीं है। ज्ञान की चर्म सीमा वह है जहाँ पहुँचने पर फिर मनुष्य की कोई इच्छा शेष नहीं रह जाती, जहाँ उसे कोई भय या विकार नहीं सताता, जहाँ वह जन्म-मरण की पीड़ा से मुक्त हो जाता है।

हे गोप गोपियो! अच्छा इस प्रकार सोचो! स्वर्ण ही धन नहीं है, वस्त्र ही धन नहीं है। गोधन या अन्न-धन भी धन नहीं है। असल धन है ज्ञान अर्थात् ज्ञान से प्राप्त वे कलाएँ जिनसे ये सब धन प्राप्त होते हैं। परन्तु यह दुःख की बात है कि आज का मानव समाज इस असल धन को भूल बैठा है और स्वर्ण को ही धन मान बैठा है। स्वर्ण की सहायता से प्राप्त होने वाले सुख को ही सुख, स्वर्ण की सहायता से प्राप्त होने वाली शक्ति को ही शक्ति मान बैठा है। आज इसीलिये न कंस ने उग्र-सेन को कैद में डाल रखा है। इसीलिये न उसने वसुदेव और देवकी को बन्दी बना रखा है। इसीलिये न जरासन्ध पृथ्वी को रौंदता घूम रहा है। इसीलिये न समस्त राजे अपनी सैनिक शक्ति बढ़ा रहे हैं कि एक दूसरे का स्वर्ण छीनें और स्वर्ण की शक्ति प्राप्त करें।

गोप गोपियो! यह दुखः की बात है कि आर्य जाति ने जिस योग की बदौलत कृषि, गोपालन में उन्नति की, जिस योग की बदौलत चौंसठों कलाओं को सीख कर स्वर्ण की शक्ति प्राप्त की

और विश्व को चमत्कृत किया इसी योग को वह भूलती जा रही है।

हे गोप गोपिकाओ! मुझे यह देख कर महान् दुःख होता है कि जो आर्य माताएँ अपने लालों को हँसते-हँसते युद्ध क्षेत्र मे भेजती हैं और उनकी मृत्यु का समाचार सुनकर हर्ष मनाती है वे ही अपना एक दुध मुँहा शिशु भी योग की क्रिया सीखने का नहीं देतीं। वरन् ऐसा अवसर आता है तब आंसू बहाने लगती हैं। योग से विरक्ति ज्ञान से विरक्ति है और ज्ञान से विरक्ति धन और जीवन से विरक्ति है और इस प्रकार सर्व-नाश है।

हे गोप गोपिकाओ! सुनो! संक्षेप में मैंने तुम्हें बता दिया कि योग क्या है और उसका प्रयोजन क्या है? अब मैं तुम्हें यह बताता हूँ कि मैं क्यों तुम्हें योग की ओर ले जाना चाहता हूँ। बात यह है कि योग साधन के लिए जिस स्वस्थ व शुद्ध शरीर निर्मल मन की आवश्यकता है वह आज भारत में सिवाय तुम गोपों के और किसी के पास नहीं है। ब्राह्मण सब कर्म-काण्डी हो गये हैं। वेद पढ़ना और पढ़ाना बस इतने ही में उन्होंने अपने जीवन की इति मान ली है और फिर सोमरस के सतत पान से अविवेकी भी हो गये हैं। जब नशे के कारण होश में ही नहीं रहेंगे तब दूसरों को क्या होश में लावेंगे। क्षत्रिय भी व्यसनी और प्रमादी हो गये हैं। उनका ध्येय समाज की रक्षा था। पर वे बड़े बड़े गिरोहों में संगठित होकर लूट मार करते घूम रहे हैं। कंस इस प्रदेश का राजा है। पर इसे हम लुटेरा कहें तो क्या उचित नहीं है। जरासंध दूसरा लुटेरा है।

इसी प्रकार जितने भी राजे सैनिक बल से पूर्ण हैं वे युद्ध रत हैं। यदि उन्हें रोका न गया तो संसार का विनाश हो जायगा। संसार को इसी विनाश से बचाने और सुख शान्ति की स्थापना करने के लिये योग-बल की आवश्यकता है। ब्राह्मणों का और क्षत्रियों का विश्वास योग बल से उठ गया है। वे नशेबाज, व्यसनी और युद्धप्रिय हो उठे हैं। उनकी सन्तानें यौगिक साधनाओं के लिए अब अयोग्य हैं। रहे वैश्य वे भी स्वर्ण संचय में लगे हैं। क्यों कि स्वर्ण ही शक्ति है ऐसा उन्होंने समझ लिया है।

तुम गोपगण इस तृष्णा से परे हो। वनों में विचरने और दूध-घृत के सेवन से तुम्हारे शरीर शुद्ध व पुष्ट हैं और तुम्हारी आत्माएँ निर्मल हैं। यदि तुम दस बीस भी योग साधन के द्वारा जन कल्याण के लिये अग्रसर हो ओ तो दस-बीस की शक्ति दस-बीस लाख सेना के बराबर हो सकती है। इसी से संसार के. कल्याण के निमित्त मैं तुमसे योग साधन की ओर दत्त चित्त होने की प्रार्थना करता हूँ। स्मरण रखो, योगियों के आश्रम उजड़ गए तो कहाँ रहोगे तुम। कहाँ रहेंगी तुम्हारी गौवें। कंस और जरासन्ध जैसे राजा तुम्हारी सन्तानों को अपनी सेना में सम्मिलित करके कन्दों की भांति भुनवा डालेंगे और तुम्हारा धन और धरती सब हर लेंगे।

हे गोप गोपिकाओं मुझे जो कुछ कहना था, कह चुका। अब तुम्हें कोई शंका हो तो पूछो।

गोपा ने प्रश्न किया—'महाराज, ब्राह्मण जैसे सोम-सुरा का पान करके मदमस्त और विवेकहीन हो रहे हैं वैसे ही योगी भी क्या अपनी योग निद्रा में मदमस्त नहीं रहता ?'

'नहीं, कदापि नहीं।' उद्धव ने उत्तर दिया—'योग निद्रा और साधारण निद्रा में अन्तर है। साधारण निद्रा में हृदगति बन्द नहीं होती श्वास क्रिया जारी रहती है। परन्तु योग निद्रा में हृदगति बन्द हो जाती है और श्वास क्रिया भी रुक जाती है। पर मन की शक्ति बहुत बढ़ जाती है। योग की आत्मा शरीर से एक हल्के प्राण सूत्र से बँधी हुई गगन में इस प्रकार विचरने लगती है जैसे किसी बालक के हाथ से खिंचने पर पतंग ऊपर चढ़ती है। जैसे ही बालक खींचता है और झटके देता है वैसे ही पतङ्ग ऊपर चढ़ती है। इसी प्रकार योग में जो जितना ही अधिक अपने श्वास को रोक सकता है उसकी आत्मा उतना ही ऊँचे चढ़ती है और फिर उस व्यक्ति को ऐसी आत्म-शक्ति प्राप्त होती है कि संसार के कार्य उसी की इच्छा॰ शक्ति पर अवलम्बित हो जाते हैं। योगी की आत्मा राजाओं की आत्माओं में बैठ कर उन्हें युद्ध विरत कर सकती है। उन्हें सन्मार्ग पर चला सकती है।

'यह बात समझ में नहीं आती महाराज ?' गोपा बोली—'योगी कैसे किसी का विचार बदल सकता है ?'

'अच्छा देखो' उद्धव ने कहा। 'सामने आम के वृक्ष खड़े हैं। मैं इन्हें अपने योग बल से कुसमित करता हूँ।'

'कीजिये ?'

उद्धव ने गहरी सांस खींची। प्रज्वलित अग्नि कुण्ड के ऊपर छाया धूम और अग्नि की लपटें उन्होंने अन्दर इस प्रकार खींच लिया जैसे कोई गँजेड़ी चिलम पर फूक मार कर गांजे का धुआँ खींच लेता है। लोगों ने देखा कि याज्ञिक लोग तन शिथिल और मन मलीन हो उठे हैं, हवन कुण्ड की अग्नि बुझ गई है।

'फिर उद्धव ने सम्पूर्ण धुआँ अपनी नासिका के रन्ध्रों से आम्र कुञ्जों की ओर प्रवाहित किया। अरे यह क्या, सम्पूर्ण आम्र कुञ्ज इस प्रकार कुसुमित हो उठा जैसे बसन्त ऋतु आ गई हो। आम के बौरों की मधुर गंध से वहाँ उपस्थित गोप-गोपी मदमस्त से हो उठे।

पर यह दृश्य कुछ ही क्षण रहा। उद्धव ने फिर प्रश्वास खींचा। आम्र कुञ्ज पुनः अपनी पूर्व स्थिति में आ गये जैसे धूप के बाद बदली छा गई हो! और जब उद्धव ने पुनः प्रश्वास छोड़ा तब हवन कुण्ड प्रज्वलित हो गया, धूम्र सर्वत्र छा गया और याज्ञिक गण वेद मन्त्रोचारण कर उठे।

'देखा योग की शक्ति ?'

'हाँ महाराज।' गोपा बोली।

'पर यह तो मेरे जैसे अल्पाभ्यासी की शक्ति है, एक लघु आत्मा का काम। यह विश्व परमात्मा की रचना है जो एक महान आत्मा है। योग लघु आत्मा को इसी अनन्त और महान आत्मा से मिलाकर विश्व को शांतिमय और सुखद बनाने की

क्रिया है। योगी की शक्ति सीमित होती है। पर बहुत से योगी अपनी सीमित शक्तियों को मिला कर महान आत्मा से सानिध्य स्थापित करके महान कार्य कर सकते हैं।'

वृषभानु अपनी नवजात कन्या राधा को लेकर उठे और उद्धव के चरणों में उसे डालते हुए बोले—'गुरुदेव पुत्र तो भगवान ने मुझे नहीं दिया; कन्या दी है। पर यह कन्या मैं आप के श्री चरणों में अर्पित करता हूँ। इसे योग की शिक्षा दें।

'स्त्री का शरीर योग साधन के लिए उपयुक्त नहीं है वृषभानु !' उद्धव बोले—'पर मैं इस कन्या को आशीर्वाद देता हूँ कि यह विश्व को सुख शान्ति से भरने वालों के काम में सहायक होगी और युद्धातुर राजे और उनकी सेनाएँ इसकी मुस्कान मात्र के आगे इस प्रकार छिन्न-भिन्न हो जायगीं जैसे सूर्य को अवलोक कर कुहासा बिलीन हो जाता है।

उद्धव ने हवन कुण्ड से गर्म राख निकाल कर नवजात कन्या राधा के लिलाट पर लगा दिया और ध्यानावस्थित होकर उसके लिए मङ्गल कामना करने लगे।

३—प्रथम मिलन

गोप-बाल-बालिकाओं के बीच में खेल-खाकर राधा अब बड़ी हो गई हैं। गृह कार्यों में अपनी माता का और गृह के बाहर के कार्यों में अपने पिता का हाथ बटाने लगी हैं। अपने शील-मृदु व्यवहार और अनुपम सौंदर्य के कारण वे सबको अत्यन्त प्रिय हो उठी हैं। गोप-कुमार और कुमारिकाएँ उनका इतना आदर मान करते हैं कि मानों वे उनकी रानी हों।

माता-पिता ही नहीं अन्य ग्राम-पुर वासी भी उन्हें कोई भी काम सौंप देते हैं जिसे वे बड़ी तत्परता से करती हैं। ब्रज के सारे निवासी उन्हें अपनी ही कन्या समझते हैं। उन सबको वे इतनी प्रिय हो उठी हैं।

आज नन्द ने उन्हें एक विचित्र काम सौंपा है। माता के बनाये हुए पकवान को वृषभानु और अन्य गोपों को खिला कर वे घर को लौट रही थीं कि उनके कानों में नन्द का परिचित स्वर गूँज गठा।

'राधा ?'

राधा ने पीछे मुड़कर देखा। नन्द सुन्दर पीत वस्त्रों में लपेटे एक नन्हा शिशु लिए हुए खड़े थे। उस शिशु को राधा को सौंपते

हुए बोले—'बेटी, यहाँ से सीधे मेरे घर पर जाना। इस बालक को नन्दरानी को सौंप कर तब अपने घर जाना।'

राधा ने बालक को ले लिया और आश्चर्य-चकित-सी उसकी ओर देखा।

'अब जाऊँ?' वे बोलीं।

'हाँ, सावधानी से जाना। बालक का कोई अनिष्ट न हो।' नन्द ने कहा।

'बहुत अच्छा।' कह कर राधा चल पड़ीं। उन की दृष्टि शिशु पर लगी थी पर तो भी उनके पग चिर अभ्यस्त पथ पर सदा की भाँति पड़ रहे थे। नाना विचारों में मग्न वे तेजी से कदम बढ़ाती हुई आगे बढ़ी जा रही थीं।

पिछले कई दिनों से ब्रज में जिस शिशु की चर्चा थी सम्भवतः वह यही है, राधा ने सोचा। नन्द इस शिशु को सबकी दृष्टि बचा कर अपने पास रखते थे यह उन्हें ज्ञात था। कोई-कोई कहते थे, यह किसी महान् पराक्रमी यदुवंशी राजा का पुत्र है जो राजनैतिक कारणों से चोरी से नन्द के पास पहुँचाया गया है। क्योंकि इसके प्राणों का खतरा है और इसीलिए नन्द की बलिष्ट बाँहों की छाया में रखा गया है जिससे इसकी रक्षा हो।

आगे कदम बढ़ाती हुई राधा ने उस शिशु को चुमकारा। शिशु राधा की चुमकार के उत्तर में मुस्कराया। अद्भुत मुस्कान थी वह। राधा उस पर मुग्ध हो गईं। उन्हें लगा कि जैसे वह नन्हा शिशु ही उनका प्रियतम हो। लज्जा से उनके दोनों कपोल

रक्तिम हो उठे। उनकी श्वास-प्रणाली गतिवान हो उठी। हाय! यह वे क्या सोचती हैं? लोग उन्हें क्या कहेंगे? वे खिन्न हो उठीं।

उसी समय बड़े जोर की आंधी आई। आसमान काली-काली घटाओं से महा भयानक प्रतीत होने लगा। वन-पथ में रात्रि का-सा अँधेरा छा गया। राधा ने अपने अञ्चल में उस शिशु को छिपाया और शून्य पथ में तेज हवा के झोकों की ओर पीठ करके बैठ रहीं जिससे बालक की रक्षा हो।

आह! नन्द ने यह कार्य उस अजान अबला को क्यों सौंपा? इस शून्य निर्जन में यदि कोई दुष्ट आ जाय तो कौन उसकी रक्षा करेगा? और यह तूफान! पता नहीं कोई दैत्य ही न इस तूफान पर चढ़ कर आया हो। राधा सिहर उठीं। भय से उनकी रोमावलि खड़ी हो गई।

उन्होंने पुनः उस शिशु की ओर देखा। उन्हें लगा कि जैसे यह शिशु पूर्ण पुरुष हो और उनकी रक्षा में सब प्रकार समर्थ हो। पर जहाँ मन में इस प्रकार के भाव का उदय हुआ वहीं यह विचार भी आया कि वन का यह शून्य पथ और यह शिशु रूपधारी यह छलिया प्रियतम! आह! यहाँ रहना तो ठीक नहीं जँचता। हे वन के देवो देवताओ! मेरी रक्षा करो। मेरे साथ-साथ चलो। शिशु को अपने अञ्चल में लपेटे आँधी से लड़ती, लम्बे कदम बढ़ाती वे नन्द के घर पहुँच गयीं और शिशु को नन्दरानी को सौंप कर राधा अपने घर भागीं।

उस दिन राधा ने भोजन नहीं किया। बड़ी रात तक पलंग पर पड़ी-पड़ी उसी बालक के विषय में वे सोचती रहीं। उनका मन ग्लानि से भर गया था। अपने आप पर उन्हें घृणा हो रही थी। एक नन्हा शिशु जिसे उन्हें माता की या बड़ी बहन की दृष्टि से देखना चाहिए था, क्यों कर उन्हें अन्यथा रूप में दिखाई पड़ा। अब क्या हो? आह उन्हें क्या हो गया है? वे प्रायश्चित् करेंगी, उपवास करेंगी जब तक कि उनका मन शुद्ध न हो जायगा।

तभी गोपा आई और उसने उसी शिशु की चर्चा उठाई। गोपा ने कहा—'नन्द ने ब्रज के ऊपर भारी संकट बुलाया है। वसुदेव उन्हें अपना पुत्र कंस की दृष्टि बचा कर पालने को दे गये हैं। नन्द को क्या सूझी कि वे यह बालक ले आये कंस जानेगा तो समस्त ब्रजवासियों का नाश कर देगा। मेरी तो राय है कि यह बालक उद्धव को दिला दिया जाय। वे इसको ले जाकर योग सिखावें।

वृषभानु बोले 'गोपा! नन्द ने वही किया है जो एक आदर्श पुरुष को करना चाहिए। कंस अन्यायी है। उसके मुकाबले में वसुदेव की सहायता करना हम सब का धर्म है। भले ही इस कार्य में हम गोपों का सर्वनाश हो जाय।'

'यह बालक!' वृषभानु चुप हो गये।

'कहो न क्या कहना चाहते हो?'

'यह बालक हम गोपों का नाम अमर करेगा। इसको लेकर हम कंस का राज उलट देंगे।' वृषभानु कहते गये।

'छोटा है ? नहीं तो तुम शायद इसके साथ अपनी राधा को ब्याह देते।'

'ब्याह शरीर का नहीं आत्मा का होता है। मेरी चले तो मैं तो आज इसके साथ राधा को ब्याह दूँ।'

'नन्द की भाँति तुम भी मर्यादा विहीन हो उठे हो।, कहती हुई गोपा उठ खड़ी हुई—'तुम्हारी मति मारी गई है।'

गोपा तो चली गयी पर राधा बिसूरती रही। 'यह बालक अवश्य उसका पूर्व जन्म का ·······।'

राधा ने दोनों हाथों से मस्तक को दबाया। जैसे वहाँ विचार का जो महल उठ रहा हो उसे चकनाचूर कर डालना चाहती हो।

वे पलङ्ग से उठीं और कलस उठाया। यमुना में पानी भरने चली गईं। अभी बहुत कुछ गृहकार्य करना था। इन व्यर्थ की कल्पनाओं के लिए उनके पास समय न था।

———

४—राधा का पातिव्रत धर्म

राधा जब सयानी हो गई तब वृषभानु ने अपने कुल गुरु से शुभ मुहूर्त विचरवा कर रायण से उनका विवाह कर दिया। रायण गोप कुमारों में सबसे सुन्दर और योग्य थे। वे यशोदा के भाई थे। इस विवाह के फल स्वरूप नन्द और वृषभानु के परिवारों में और भी अधिक घनिष्टता बढ़ गयी।

इस विवाह से सबसे अधिक खुशी गोपा को हुई क्योंकि वह नहीं चाहती थी कि राधा बालक कृष्ण से कोई सम्बन्ध रखे। अतएव विवाह के दूसरे ही दिन उसने राधा को अपने घर में बुला कर इस प्रकार उपदेश देना प्रारम्भ किया—

'हे वृषभानु-नन्दिनी ! मेरी बात तुम ध्यान से सुनो। अब तुम विवाहिता हो। अब तुम्हारे मन में एक मात्र तुम्हारे पति का बास होना चाहिए। बोलो है न ?'

'हाँ, है क्यों नहीं ?'

'तुम अपने कुल को मर्यादा रखोगी ?'

'क्यों नहीं ?'

'किसी पर पुरुष के साथ एकान्त में नहीं विचरण करोगी ?'

'नहीं।'

'हाँ, ठीक है। अब तुम आज से कृष्ण को अपने साथ घुमाना-फिराना, नचाना बन्द करो।'

'क्यों? कृष्ण तो बालक हैं?'

'बालक होने से क्या? पर पुरुष तो हैं?'

राधा सोच में पड़ गयीं। उनके मानस-पटल पर कृष्ण की बालमूर्ति खचित हो उठी। लाख चेष्टा करने पर भी वे उस मूर्ति को भुला न सकीं। हाय! अब वे क्या करें?

'यह तो नहीं हो सकता। कृष्ण को मैं भुला नहीं सकती।'

अरे! तब बेचारे रायण से विवाह क्यों किया था? उनके साथ तुम विश्वास घात करोगी? याद रखो! तुम कलंकिनी कहलाओगी और नर्क में जाओगी।

राधा बड़े सोच में पड़ गयीं। जब से उन्होंने होश सँभाला था उनके कान में एक ही प्रकार के शब्द पड़े थे। पति ही से स्त्री की गति है। पति ही सर्वस्व है। पति ही परमेश्वर है। पति को छोड़ कर और किसी पुरुष का ध्यान उसे कदापि नहीं करना चाहिए। अब वे क्या करें? बालक कृष्ण को अपने मन से किस प्रकार जल्दी से जल्दी निकाल फेंके। किस प्रकार कृष्ण को विस्मरण कर दें। वे क्या करें कि चौबीसों घंटे उन्हें रायण का ही ध्यान रहे। क्या करें कि कृष्ण को वे सर्वथा भूल जायँ।

राधा की मुखाकृति गम्भीर हो उठी। जीवन में प्रथम बार उन्होंने अनुभव किया कि विवाह एक बड़ा बन्धन है। ओफ! उन्होंने रायण से विवाह करने से इनकार क्यों न कर दिया? यह बात उन्हें विवाह के पहले ही क्यों न बताई गयी?

फिर कृष्ण ही क्यों ? और भी तो ग्वाल-बाल हैं। उनके पिता वृषभानु भी तो पुरुष ही हैं। क्या इन सबसे राधा मिलना व बोलना छोड़ दें। यह कैसा पातिव्रत धर्म है ? राधा ने कहा—'बड़ी बहिन पातिव्रत धर्म का पालन मैं करूँगी। उससे एक पग भी पीछे न हटाऊँगी परन्तु ……।'

'किन्तु परन्तु इसमें नहीं चलेगा ? राधे !' गोपा बोली।

'मैं इस विषय में अपनी माता से पूछूँगी ?'

'वे क्या जानें ? ब्रज में पातिव्रत धर्म का प्रतीक मैं हूँ। इस मामले में मेरे सिवाय किसी की राय मान्य नहीं होगी।'

जब आप नहीं थीं तब भी तो यह धर्म था। जब नहीं रहेंगी तब भी तो यह धर्म रहेगा। जो पतिव्रताएँ हो चुकी हैं उनकी कहानी मैंने पढ़ी है। माता कहेंगी गोपा की बात ही मान्य है तो मानूगी।

'चलो अभी चलो कीर्तिदा के पास।'

'चलो।'

दोनों लम्बे डग भरती हुई रानी कीर्तिदा के पास आयीं ? क्या देखती हैं कि रानी कीर्तिदा, वृषभानु और रायरण बैठे कोई गूढ़ मन्त्रणा कर रहे हैं।

'गोपा !' उसे देखते ही रायरण बोला—'अब हमें गोकुल छोड़ना पड़ेगा। कंस को मालूम हो गया है कि गोकुल में कृष्ण हैं और ग्वाल-बालों के बीच में खेल रहे हैं अतएव वह सभी ग्वाल बालों को मरवा डालेगा।'

'यह तो मैं पहले ही जानती थी। नन्द ने कृष्ण को लाकर अच्छा काम नहीं किया। गोपों पर न जाने क्या-क्या आफत आये।'

'अब तो यह प्रश्न नहीं है गोपा? नन्द ने कृष्ण को लाकर अच्छा किया या बुरा यह सोच कर भी हम इसके परिणाम से नही बच सकते। नन्द को हम अकेला भी नहीं छोड़ सकते। अब तो रक्षा का उपाय ही सोचना है।'

'क्या सोचा है आपने?'

हम लोगों ने तै किया है कि गोकुल छोड़ दें और आज ही रात को चल कर वृन्दावन में बसें। बड़ा ही सघन वन है।

'जब आपने गोकुल छोड़ना तै कर लिया है तब मैं भी यहाँ नहीं रहूँगी। कोई गोप यहाँ नहीं रहेगा, पर एक बात करो?'

'हाँ कहो?'

'नन्द और तुम अलग-अलग बसो।'

'ऐसा तो करना ही पड़ेगा।'

उसी रात गोप लोग अपनी गायों को वृन्दावन में हांक ले गये। वृषभानु और नन्द अलग-अलग बसे। जहाँ नन्द बसे उस स्थान का नाम नन्दग्राम पड़ा और जहाँ वृषभानु बसे उस गाँव का नाम बरसाना पड़ा।

उस दिन राधा को पातिव्रत धर्म के विषय में कुछ पूछने का अवसर न मिला। पर एक तरह से उन्हें बड़ी शान्ति मिली क्यों-

कि वे कृष्ण से दूर दूसरे गाँव में बसी थीं। उन्होंने निश्चय किया कि वे नन्दग्राम में कभी नहीं जायँगी और जब नन्दग्राम में नहीं जायगीं तब कृष्ण उन्हें दिखाई नहीं पड़ेंगे। इस तरह वे उन्हें भूल जायँगी।

पर लाख चेष्टा करने पर भी वे कृष्ण को भुला न सकीं। तब एक दिन उन्होंने रानी कीर्तिदा से पूछा—'माता जी! मुझे पातिव्रत धर्म का मर्म समझा दीजिये?'

'यह तो तुम गोपा से पूछो बेटी!' रानी कीर्तिदा ने कहा - 'हम गोपों में वही आदर्श पतिव्रता है।'

'गोपा से पूछ चुकी हूँ। उनके कथन से मन को पूर्ण सन्तोष नहीं हुआ!'

'तब अपने पति रायण से पूछो? उन्होंने धर्मशास्त्रों का पूर्ण रूप से अध्ययन किया है।'

उपयुक्त अवसर देख कर एक दिन राधा ने रायण से प्रश्न किया—'स्वामी पातिव्रत धर्म क्या है?'

'अरे! तुम्हारे रूप में ही तो पातिव्रत धर्म ने इस पृथ्वी पर अवतार लिया है राधे और तुम मुझ से इसका अर्थ पूछती हो। पातिव्रत धर्म वही है जो तुम हो।'

'स्वामी, मैं मन क्रम वचन से तुम्हारा चिन्तन नहीं कर पा रही हूँ। मेरे मानस पटल पर बालक कृष्ण की मूर्ति खचित हो-हो उठती है।'

किसने कहा कि तुम मेरा चिन्तन करो ? मेरी तुम्हारी आत्मा विवाह के बन्धन में मिल कर एक हो गई है। मैं और तुम अब दो कहाँ रह गये। जो अपने में मिल कर एक हो गया है उसका क्या चिन्तन। चिन्तन तो मनुष्य उसका करता है जो अपने से भिन्न, अपने से दूर, अपने को अप्राप्य हो। कृष्ण भिन्न हैं। तुम्हारे लिये कृष्ण का चिन्तन करना स्वाभाविक है। मैं भी तो कृष्ण का चिन्तन करता हूँ।

'परन्तु गोपा तो कहती हैं, कृष्ण का चिन्तन मत करो। क्योंकि वे पर पुरुष हैं।'

'कोई नयी बात गोपा ने नहीं कही। विवाहिता स्त्री के लिये सभी पुरुष पर-पुरुष हैं और तुम भी कृष्ण को पर पुरुष ही समझती हो न ?'

'हाँ।'

'तब ठीक है। स्त्री का यह ज्ञान कायम रहे कि अपने पति को छोड़ कर शेष सब पर-पुरुष हैं, बस यही पातिव्रत धर्म है। जब तक यह ज्ञान कायम है तब तक स्त्री पतिव्रता है।'

'पर गोपा कहती हैं कि तुम्हारे मन में एक मात्र तुम्हारे स्वामी का बास होना चाहिए। नहीं तो तुम कलंकिनी कहलाओगी।'

'गोपा ने यह विधवा का धर्म बताया है जिसका स्वामी दूसरे लोक में चला गया हो।'

'और सधवा का धर्म कैसा होता है ?'

सधवा का धर्म यह है कि जो बात उसके मन में हो वही उसके पति के मन में भी हो। तुम्हें कृष्ण से प्रेम है मुझे भी कृष्ण से प्रेम है। हम तुम दोनों कृष्ण के बारे में एक प्रकार से सोचते हैं। तब इस में कोई दोष नहीं है।

'और हम तुम भिन्न प्रकार से सोचें?'

'तब दोष हो सकता है।'

राधा की समझ में रायण का यह दर्शन शास्त्र कुछ न आया। परन्तु उन्हें संतोष हुआ कि उनके पति ने उन्हें पातिव्रत धर्म का साक्षात् अवतार ही कह डाला। और इस कारण उन्हें और भी सावधान रहने की आवश्यकता है। उन्होंने नन्दग्राम में आना-जाना और कृष्ण की चर्चा ही छोड़ दी।

५—वंशी-ध्वनि

ठीक अर्द्ध-निशा में गोपा को आज पुनः वन्शी ध्वनि सुनाई पड़ी। उसने बहुत संगीत सुने थे, बहुत नृत्य देखे थे, वह स्वयम् नृत्य संगीत प्रवीण थी। परन्तु मन को पूर्ण रूप से मोह लेने वाली ऐसी स्वर लहरी उसने कभी न सुनी थी। बिस्तर पर पड़े ही पड़े उसने आँखें खोल दीं।

आकाश में पूर्णचन्द्र उदित था। लता वृक्षों पर रजत चन्द्र-ज्योत्सना झलमला रही थी, शीतल पवन के झोंके उसके अङ्गों का स्पर्श करके उसके रोम-रोम में नव-चेतना भरने लगे और वन-पुष्पों की मादक सुगन्ध उसकी नासिका से प्रविष्ट होकर उसके अन्तरतम में सोई सुप्त लालसाओं को जगाने लगी।

बिस्तर पर वह लेटी न रह सकी। वह उठी। उसके श्रवण उस दिशा की ओर सजग प्रहरी से सतर्क हो उठे जिधर से वह वंशी ध्वनि आ रही थी। उसे लगा कि जैसे रात्रि के इस सूने प्रहर में निशानाथ, ऋतुनाथ और रतिनाथ तीनों मिल कर उसके संयम के किले को ढहा देने पर तुल गये हैं। आह! यह पूर्ण चन्द्र ज्योत्स्ना-स्नात रजनी, यह

मादक संगीत ! उसे उन दिनों का स्मरण हो आया जब उसके स्वामी जीवित थे और वसन्त की चाँदनी रातें वह उनके साथ नाचते-नाचते काट देती थी। उसे लगा कि जैसे ब्रज के कण कण में व्याप्त उसके स्वामी की आत्मा इस मधुर संङ्गीत के रूप में उसका आह्वान कर रही है। उसके पैर अनायास ही उस दिशा की ओर चल पड़े जिधर से वह वन्शी ध्वनि आ रही थी।

गोपा अकेली नहीं थी। और भी कितने ही गोप गोपी उस स्वर लहरी के सहारे उसी ओर बढ़े चले जा रहे थे। यह कृष्ण की वन्शी की ध्वनि थी। 'ओह ! यह कृष्ण तो जादूगर है। इसकी उपेक्षा सम्भव नहीं।' इस प्रकार मन ही मन बिसूरती हुई गोपा कुछ रुकती-रुकती-सी भी उधर बढ़ती ही गई।

सघन वन के तंग रास्तों से अपने शरीर और साड़ी को कांटों की खरोंचों से बचाती हुई वह उस स्थान पर पहुँची, जहाँ से यह वंशी ध्वनि फूट कर सारे वृन्दावन को आन्दोलित कर रही थी।

उसने देखा कि गोप-गोपी नृत्योन्मत्त जोड़ों में राधाकृष्ण के गिर्द चक्कर काट रहे हैं। बीच में राधाकृष्ण नृत्यशील हैं और कृष्ण वंशी बजा रहे हैं। उसने देखा कि उसी वंशी को नृत्य की लय के साथ बीच-बीच में राधा कृष्ण से छीन लेती हैं और उसमें फूँक मारती हैं तब और भी मनमोहिनी मादक ध्वनि उसमें से निकलती है।

जैसे कुशल तैराक डूबते को बचाने की प्रेरणा से उमड़े नद में कूद पड़ता है वैसे ही नृत्यकुशला गोपा इस रास मंडल में कूद पड़ी। गोपा के पग सञ्चालन करते ही रास में एक नई लहर-सी आ गई एक ही क्षण में वह कृष्ण के पास जा पहुँची, राधा को उसने एक विचित्र आदेश भरी चितवन से देखते हुए पीछे ढकेल दिया और कृष्ण के गिर्द इस तरह नृत्य करती हुई मडराने लगी कि जान पड़ा जैसे उसने कृष्ण के चारों तरफ एक दीवाल-सी खड़ी कर दी है और राधा उस दीवाल के बाहर हैं। वह कृष्ण की वन्शी छीन कर बजाने लगी। उसने कृष्ण का मोर-मुकुट उतार कर अपने मस्तक पर धारण कर लिया, वह स्वयम् कृष्ण बन गई।

इस प्रकार नाचते-नाचते उसने सवेरा कर दिया और अन्तिम ताल के साथ जब यह संगीत समाप्त हुआ तब गोपा ने देखा कि वहाँ पर न कृष्ण हैं और न राधा। संगीत के बीच में ही दोनों कब खिसक-कर कहाँ चले गये यह किसी को कुछ ज्ञात न हुआ।

और गोप गोपी तो सब अपने घर आये परन्तु गोप राधा को खोजने लगी कि वह कहाँ गई है। रात्रि का नृत्य उसे स्वप्न-सा प्रतीत हुआ और उसे ग्लानि हुई कि वह कृष्ण की वंशी ध्वनि के पीछे यहाँ तक क्यों चली आई? गोपा जो इतनी संयमशीला

है, जब उसका यह हाल है तब भोली राधा क्या करे ? यह तर्क भी उसके मन में उठा। इस प्रकार तर्क-वितर्क करते उसे क्रोध भी हो आया। उसे लगा कि राधा कृष्ण दोनों उसकी उपेक्षा करके चले गये हैं। उसके सिर पर अब भी मोर-मुकुट विराजमान था और हाथ में वंशी थी। मोर-मुकुट उतार कर उसने एक झाड़ी में फेंक दिया और वंशी भी फेंकने जा रही थी तभी उसके कानों में राधा का परिचित स्वर गूँज उठा—'हाँ ! हाँ ! गोपा दीदी ! तुम यह क्या रही हो ?'

'कौन ? राधे !' तू यहाँ क्या कर रही है ?

'नृत्य समारोह से कृष्ण मुझे यहाँ तक खींच लाये !'

'और तू खिंचती चली आई ? वाह रे ! चल, आज ही वृषभानु से सब कहूँगी। ब्रजवासियों को अभी ज्ञात नहीं है कि तूने किस कुपथ पर पाँव रखा है ?'

'गोपा दीदी ! तुम तो अकारण रुष्ट हो रही हो। कृष्ण ने तो ठीक ही किया जो मुझे यहाँ खींच लाये। तुमने नृत्य के बीच में कृष्ण बन कर हमारी सहायता की। तुम न आ जातीं नृत्योन्माद में तो हम अपने कर्तव्य से विचलित हो जाते।'

'कृष्ण के साथ दिन में भी अन्धियारे से भरे इस लता कुञ्ज में अकेली बैठी तू कौन से कर्तव्य का पालन कर रही है री ?'

'अन्दर आकर देखो न ?'

गोपा अन्दर गई। क्या देखती है कि दूध-दधि मक्खन, घृत से भरे मटके रखे हैं ? 'यह सब क्या है रे ?' गोपा बोली।

कृष्ण का संकेत है कि कंस की नगरी में एक बूँद भी दूध, दधि या मक्खन न पहुँचने पावे। क्योंकि हमें कंस से एक न एक दिन लड़ना है। दूध घृत के अभाव में उसके सैनिक जितना ही निर्बल रहेंगे उतना ही अच्छा।

'केवल सैनिक ही तो दूध, घी नहीं खाते। अन्य प्रजा भी तो……।'

'तुम ठीक कहती हो गोपा दीदी ! परन्तु प्रजा को दूध, घी न मिलेगा तो उसके मन में कंस की राज्य व्यवस्था के प्रति अनादर उत्पन्न होगा। अनादर से क्रोध की उत्पत्ति होगी। क्रोध से विद्रोह जन्म लेगा जो कंस को भस्म कर देगा।'

'कृष्ण ने सोचा तो ठीक है। परन्तु अकेले तुम और कृष्ण किस-किस मार्ग को रोकोगे ?'

'हम अकेले ही थोड़े हैं। मथुरा को जाने वाले समस्त मार्गों पर गोप गण डटे हैं। पिछले दो सप्ताहों से एक बूँद दूध भी उधर नहीं जाने पाया है। उधर से लौटने वाले समाचार लाये हैं कि मथुरा में हाहाकार मचा है।'

'तो कंस जल्दी ही वृन्दावन को कटवा कर साफ करा देगा ?'

'इसका उपाय हमने कर लिया है।' वृन्दावन में अब कृष्ण की मर्जी के बिना कोई प्रवेश नहीं कर सकता।'

'राजा-राजा लड़ते हैं और प्रजा युद्ध से दूर रहती है। जो राजा विजयी होता है प्रजा उसको राजा मान लेती है। यही सनातन नियम है। इस नियम की अवहेलना क्या कृष्ण के इस कार्य से नहीं होती?'

'सो तो वही बता सकते हैं।'

'कहाँ है कृष्ण ?'

'मथुरा जाती हुई गोपियों से दूध, दही छीनने गये हैं। बैठो अभी आते ही होंगे।'

गोपा लता कुञ्ज के अन्दर बैठ गयी।

थोड़ी देर चुप रहने के पश्चात् वह बोली—'रायण का भी कुछ पता है, कहाँ हैं ?

'है, क्यों नहीं? इस समय वे उद्धव के आश्रम में हैं। सुना है दो सप्ताह की समाधि ली है। मुझे आज्ञा दी है कि इस बीच में मैं कृष्ण के साथ रहूँ और उनके कामों में योग दूँ और जब तक वे समाधि से न निकलें तब तक उनके पास न जाऊँ।'

तभी कृष्ण जी वहाँ आ पहुँचे। उनके पीछे अनेक गोप थे। दूध, दही से लथ-पथ। मालूम हुआ कि गोपियों का एक झुण्ड

मथुरा में दधि बेचने जा रहा था। उसको इन लोगों ने वापस लौटना चाहा, नहीं लौटा तब उनका दधि छीनना चाहा, नहीं छीनने दिया, तब उनके मटके तोड़-फोड़ डाले। इसी कांड में सब दूध, दही से लथपथ हो गये।

'यह तो बड़ा अनर्थ हो रहा है, कृष्ण!' गोपा बोली।

'कंस के अनर्थ को कम करने के लिए यह अनर्थ आवश्यक है।' कृष्ण ने कहा।

'सो तो ठीक है। पर बिना दूध, दधि का विक्रय किये इन गोपियों का गुजारा कैसे होगा?'

'उनको जो चाहिए सो हम सब देंगे।'

'कहाँ से?'

'कंस के राज्यकोष को लूटकर।'

'अच्छा तुम जो समझो करो। पर राधा को तुम पति सेवा से विमुख क्यों किए हुए हो?'

'राष्ट्र सेवा सबसे बड़ी सेवा है। इसमें पति, पिता, माता, पुत्र सबकी सेवा आ जाती है।'

'अच्छा रात भर नाचना और दिन भर अँधेरी भयावनी गुफा में पर स्त्री के साथ छिपे रहना और राहियों को लूटना अच्छी है तुम्हारी राष्ट्र सेवा?'

कृष्ण जी हँसे। राधा भी मुस्करा दीं। गोपा क्रुद्ध गई। 'अच्छा मैं ब्रज में इसका चवाव करूँगी।'

'कुछ तो करो!' कृष्ण जी बोले।

गोपा उठ कर जाने लगी। कृष्ण की वंशी अभी भी वह हाथ में लिये हुए थी।

'मेरी वंशी तो देती जाओ!'

'नहीं दूँगी। यह अनर्थकारी वाद्य यन्त्र किसी के हाथ में न पड़ने दूँगी। इसे यमुना में फेंक दूँगी।' कहती हुई गोपा आगे बढ़ गयी।

राधाकृष्ण दोनों एक दूसरे को देखते मुस्कराते खड़े रहे।

६—चवाव

गोपा ने राधा कृष्ण के वृन्दावन के लता-वृक्ष निर्मित कुंज कुटीरों में मिलने और चाँदनी रातों में एक साथ मिलकर नृत्य करने की उस दिन की देखी बात को लेकर अनेक अर्थ निकाले और अनेक प्रकार से उसकी चर्चा की। सारे ब्रज में यह चवाव फैल गया कि राधा ने अपने पति की उपेक्षा कर दी है और कृष्ण के पीछे भागी-भागी फिरती हैं। राधा के साथ ही उनकी सहेलियों की भी निन्दा प्रारम्भ हो गई।

राधा से भी अधिक निन्दा कृष्ण की प्रारम्भ हो गई। यदि वे बस्ती से बाहर निर्जन वन में भी वंशी बजाते तो कहा जाता कि वह राधा के लिये वहाँ पहुँचने का संकेत है। यदि वे किसी गोप की अनुपस्थिति में गाय दुहने जाते तो कहा जाता कि उस की अनुपस्थिति में वे उसकी पत्नी को उसके पतिव्रत-धर्म से विचलित करने गये हैं। यदि वे यमुना किनारे जाते तो कहा जाता कि वे जल भरने जाने वाली गोपियों से छेड़-छाड़ करने गये हैं। इन चवावों के आधार पर गोपियाँ यशोदा के पास शिकायतें ले-लेकर पहुँचने लगीं कि कृष्ण को रोको। और जब यशोदा पूछतीं कि किसी गोपी का नाम बताओ जिसे

कृष्ण ने छेड़ा हो तो कुछ न बतातीं। सब यह कहतीं कि हमने सुना है। किसने सुना है? इस प्रश्न का उत्तर भी कोई न दे पाती।

नन्द ने कृष्ण को राधा और उनकी सहेलियों के बीच में इसलिये छोड़ रखा था कि लड़कियों और स्त्रियों में वे कंस और उसके दुष्ट सेवकों की दृष्टि से बचे रहेंगे। परन्तु अब क्या हो? अब वे बालक कृष्ण को लेकर कहाँ जांय? कैसे उसकी रक्षा हो?

शिकयातें जब अपने चर्म सीमा पर पहुँचीं तब यशोदा ने कृष्ण से पूछ-ताछ शुरू की। परन्तु कृष्ण के भोले उत्तरों से उन्हें भासित हो गया कि कृष्ण निर्दोष हैं। परन्तु यह बवाव कैसे बन्द हो? कृष्ण के चरित्र पर यह जो कलङ्क लगाया जा रहा है यह कैसे मिटाया जाय?

नन्द और यशोदा इस उधेड़-बुन में पड़े ही थे कि एक विचित्र शिकायत उनके कानों में पहुँची। कहा गया कि आज दुपहर में जब गोपियां अपने-अपने चीर व चोली किनारे पर रख कर यमुना के जल में स्नानार्थ मग्न हुई तब कहीं से कृष्ण जी आ पहुँचे और सब के वस्त्र लेकर पास ही के कदम्ब के वृक्ष पर चढ़ गये और वंशी बजाने लगे। वंशीध्वनि सुनकर गोपियों का ध्यान अपने वस्त्रों की ओर गया। पर उनके वस्त्र यथा स्थान नहीं थे। उन्हें तो कृष्ण जी समेट कर धोबी जैसा एक भारी गठ्ठर बनाकर वृक्ष पर चढ़े हुये थे। पानी में से गोपियों ने बहुत

अनुनय विनय किया पर कृष्ण ने किसी का भी वस्त्र नही गिराया और यही शर्त लगायी कि सब गोपियां पानी से बाहर निकलें तब वे उनके वस्त्र लौटायेंगे। भला नग्न गोपियां पानी से बाहर कैसे निकलती ? दो चार जिन्हें लज्जा नहीं थी निकली पर शेष सब पानी में ही तब तक अपने अंग छिपाए रहीं जब तक कि निशा ने आकर उन्हें अपनी काली साड़ी नहीं पहना दी।

दूसरे दिन बड़े सबेरे ही जब कृष्ण अपनी गौओं को लेकर वन में चराने जारहे थे, गोपा के नेतृत्व में गोपियों का एक झुण्ड नन्द के आंगन में आ उपस्थित हुआ और यशोदा को कड़ा उलहना देने लगा।

यशोदा ने आज्ञा दी कि गौओं को अभी रोको और कृष्ण को अन्दर बुलाओ। श्री कृष्ण जी मुस्कराते हुये घर के भीतर पहुँचे। उस समय छवि देखते ही बनती थी। नील कमल के समान उनका शरीर सुकोमल और सजीला था। वे पीताम्बर पहने हुये थे, मस्तक पर मोर मुकुट शोभायमान था। एक हाथ में वंशी थी दूसरे में चक्र। गले में वन फूलों की माल पड़ी हुई थी।

'यह माला तुमने कहाँ पाई ?' गोपा ने आगे बढ़कर ऐसे प्रश्न किया जैसे वे कहीं से चुरा लाये हों ?

'किसने इसे गूँथा है ?' एक दूसरी गोपी ने तेज स्वर मे दूसरा प्रश्न किया।

'यह माला मुझे राधा ने दी है।' कृष्ण जी का छोटा सा उत्तर था।

'क्यों री राधा ! यह माला तू ने गूंथा है?' एक साथ कइयों ने पूछा।

'हां, मैं रोज ही दो मालायें बनाती हूँ। एक कृष्ण को देती हूँ, एक स्वयं पहनती हूँ।'

गोपा ने पूछा—'कभी रायण को भी माला पहनाई है?'

'वे नहीं पहनते ! उन्हें पुष्प पसन्द नहीं हैं। वे तो बर भेग-साधन में रत रहते हैं। वे कहते हैं 'माला कृष्ण को पहनाओ। कृष्ण के गले में अच्छी लगती है।' राधा एक सांस में यह सब कह गईं। और बोलीं—'यह सब पूछने का तुम्हारा मतलब क्या है?'

'मतलब है? तुम्हारा और कृष्ण को यह प्रेम लीला ब्रज बनिताओं के सामने एक अस्वस्थ आदर्श है। इसका तुम्हें मना करना पड़ेगा।'

राधा का मुख क्रोध और लज्जा से रक्तवर्ण हो गया। वे बोलीं—'कृष्ण को मैं मनुष्य नहीं मनुष्य से बहुत ऊँचा परमेश्वर मानती हूँ। मेरा यह सौभाग्य है कि मुझे उनकी सेवा का अवसर मिला है। तुम ईर्षा क्यों करती हो? तुम भी माला बनाओ, कृष्ण को पहनाओ। मैं मनाकरूँ तब कहो?''

'कल की छोकरी मुझे उपदेश देने चली है।' गोपा बोली—'स्त्री का परमेश्वर उसका पति है। पति को छोड़ कर अन्य

पुरुष की ओर जो स्त्री आकर्षित होती है वह कुलटा है, कुलच्छिनी है।'

'मैं विवाद नहीं चाहती। तुम्हारे जो मन में आवे कहो।' राधा ने कहा।

"सुना नन्दरानी! अब क्या कहती हो?"

यशोदा ने कहा—"राधा अपने ऊपर लगाए गए लांछनों का उत्तर देने में समर्थ है। मैं उसकी ओर से क्या कहूं?"

"अपने पुत्र की ओर से तो कुछ कह सकती हो?"

"क्यों नहीं?" और उन्होंने क्रोध के स्वर में कहा—"कृष्ण सावधान आज के बाद मुझे कोई उलहना न सुनना पड़े।"

श्री कृष्ण जी ने मुस्करा कर मन्द स्वर में पूछा—'पर मेरी मैय्या मेरा अपराध क्या है? राधा ने मुझे माला दी, मैंने पहन ली। इसमें मेरा क्या अपराध है?"

"एक आध बात हो तो उसकी ओर से दृष्टि फेर लू। तेरे विरुद्ध तो रोज ही उलहना आ रहे हैं। और आज तो ये गोपियाँ बहुत ही भयानक उलहना ले आई हैं।"

"कुछ मुझे भी तो बतावें कि ये सब क्या कहती हैं?"

गोपा ने गोपियों की चीर हरण की सारी लीला कह सुनाई।

'मिथ्या आरोप! एकदम मिथ्या।' कृष्ण जी ने सहज भाव से कहा —

'मैं।' गोपा बोली।

'तुमने देखा था?'

गोपा चुप हो गई। वह घूर-घूर कर सब गोपियों को देखने लगी कि जिसने देखा हो वह बोले। पर वहाँ कोई गोपी न थी जो यह कहे कि यह मेरी आंखों देखी घटना है।

'बोलो! तुम सब चुप क्यों हो?' यशोदा ने पूछा—'किसने देखा है!'

मैय्या अब मैं जाता हूँ। देर हो रही है?'

'ठहरो।' गोपा बोली—'तुम वृन्दावन की तंग गलियों में गोपियों का रास्ता रोकते हो? तुम जल भरने जाने वाली गोपियों से छेड़छाड़ करते हो? तुम वंशी बजाकर अवांच्छनीय संकेत करते हो? तुम......?'

यशोदा ने बात काटकर कहा—'बस अब मैं उलहना सुनूँगी। आज के बाद कुछ भी शिकायत आई तो जाँच पड़-ताल न करूँगी बस प्राण दे दूगी।'

'अच्छा तो मैय्या, यह लो।' कृष्ण जी आंगन से मिले ओसारे में बिछी पलँग पर धम्म से लेट रहे। अब मैं न हिलूँगा, न डुलूँगा, न बोलूँगा, न कहीं जाऊँगा, न खाऊँगा, न वंशी बजाऊँगा जिसमें तुम्हें कोई उलहना न सुनना पड़े।

यशोदा और गोपियों ने इसे कृष्ण का एक नाटक ही समझा और इस ओर कोई ध्यान न दिया। परन्तु जब क्षण के पश्चात्

घंटे, घंटों के पश्चात् प्रहर और प्रहरों के पश्चात् दिवस बीतने लगे तब सम्पूर्ण व्रज में चिन्ता छा गई।

क्रमशः श्री कृष्ण जी बहुत ही दुर्बल हो गए। बुलाने पर भी वे न बोलते और न आंखें खोलते। यशोदा बहुत ही चिन्तित हो उठीं। वैद्य, ज्योतिषी और ज्ञानी ऋषि बुलाए जाने लगे कि श्री कृष्ण जी के प्राणों की रक्षा हो। हाय! अब क्या किया जाय? सभी गोप गोपियां चिन्तित हो उठीं।

क्या उपाय किया जाय कि श्री कृष्ण के प्राणों की रक्षा हो, वे पलँग छोड़ें। पुनः मोर मुकुट, वन माल, वंशी और चक्र धारण करें, पुनः वन में गौओं को लेकर चराने जायें। हाय! अब वे दिन क्योंकर लौटें?

जो भी आता यशोदा उससे पूछतीं—कोई उपाय है? कृष्ण की रक्षा का कोई उपाय है?' और उन्हें कोई उत्तर न मिलता।

७—परीक्षा

नन्द भवन में श्रीकृष्ण जी मूर्छित पड़े हैं। कितने ही अनुभवी वैद्य आये और चले गये; परन्तु श्री कृष्ण जी की दशा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। यशोदा दुःख से आच्छादित हो बड़े-बड़े आँसू गिरा रही हैं। नन्द जी बहुत ही चिन्तित हो उठे हैं। वे कहते हैं—'यदि कृष्ण को कुछ हो गया तो मैं वसुदेव को मुँह दिखाने लायक नहीं रह जाऊँगा और उन्होंने घोषणा की है कि यदि कोई श्री कृष्ण जी को अच्छा कर दे तो वे उसे समस्त गौयें दे देंगे।' नन्द जी की यह घोषणा सुनकर दूर-दूर से वैद्य आने लगे हैं परन्तु श्री कृष्ण जी को अच्छा करने में कोई सफल नहीं हुआ है।

इसी समय एक तरुण वैद्य नन्द जी के द्वार पर पहुँचा। उसका गौर वर्ण भस्म वेष्ठित शरीर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों स्वयम् शङ्कर भगवान पधारे हों। पहुँचते ही उसने कहा—'नन्दरानी, धैर्य धारण करो। मैं तुम्हारे पुत्र को अभी-अभी अच्छा करता हूँ। जान पड़ता है, इनके ऊपर किसी ने मारण मन्त्र का प्रयोग किया है। उसके निवारण के लिए एक छोटा-सा विधान आवश्यक है।'

'कहो-कहो ! तरुण योगीश्वर कहो ! अपने बेटे के स्वास्थ्य के लिए मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ।'

'एक छोटी-सी नई कलसी मँगवा दो ?'

तुरन्त ही एक कलसी आ गई।

'बस इस कलसी में थोड़ा-सा यमुना जल मँगवा दो ?'

एक गोपी कलसी उठा कर यमुना की ओर चली।

'ठहरो गोपी !' वह तरुण वैद्य बोला—'इस कलसी में तभी हाथ लगाओ जब तुम समझो कि तुम सती हो। पूर्ण सती।'

गोपी ने कलसी रख दिया और बोली—'महाराज, मैं सती होने का दावा नहीं करती। मेरे पास बहुत से काम हैं। पति को देव मूर्ति मान कर मैंने उसकी पूजा कभी नहीं की। और कभी-कभी मेरी उससे अनबन हो जाती है। तब मैं उसको छोड़ कर दूसरे पुरुष से विवाह करने की कामना भी करती हूँ।'

'सती तुम भले ही न होओ ! पर तुम सत्यवादिनी हो। मैं तुम्हारे साहस के साथ अपनी वास्तविकता स्वीकार करने की प्रशंसा करता हूँ। पर यह कार्य तुमसे न होगा।'

'कदापि नहीं महाराज।' गोपी कलसी रखकर एक ओर खड़ी हो गई।

समस्त उपस्थिति जनों में सन्नाटा छा गया। कलसी जहाँ की तहाँ रखी रह गई।

'क्या मैं समझूँ कि ब्रज में एक भी स्त्री सती नहीं है।' वह तरुण वैद्य बोला।

उसकी ऐसी बात सुनकर सभी स्त्रियों का मुख क्रोध से तम-तमा आया। परन्तु तो भी किसी ने कलसी को हाथ न लगाया तब नन्दरानी स्वयं जल भरने चलीं।

'ठहरो नन्दरानी।' वैद्य बोला—'तुम तो माता हो। यह कार्य परिवार के अतिरिक्त किसी अन्य स्त्री द्वारा होना चाहिये।'

'गोपा! गोपा!! जल्दी से कलसी ले जाकर जल भर लाओ। तुम विश्व विख्यात सती हो। मेरे लाल को बचाओ।

नन्दरानी की बात सुनकर गोपा जल भरने चली, गर्व से मस्तक ऊँचा किए हुए।

'ठहरो गोपा!' वैद्य फिर बोला—'तुम्हारा सतीपन विश्व-विदित है। तब भी इस विधान में थोड़ी सी क्रिया करनी पड़ती है जो कठिन है। उसको समझ लो तब कलसी उठाओ।'

'बताओ वैद्यराज क्या करना है?' गोपा बोली—'व्यर्थ समय नष्ट मत करो।'

वैद्य ने कहना प्रारम्भ किया—'पहले इस कलसी में सहस्र छिद्र बनाओ।'

गोपा ने एक कील लेकर कलसी में तत्काल सहस्र छिद्र बना दिये।

वैद्य बोला—'अब श्री कृष्ण के कुञ्चित केशों को एक लर काट लो।'

'कृष्ण को मैं हाथ नहीं लगा सकती। पर पुरुष का स्पर्श सती के लिये अभिशाप समझती हूँ।'

'क्या कहना है? तुम्हारा स्त्री धर्म धन्य है गोपा! खैर, इतना काम मैं किये देता हूँ।'

वैद्य ने श्री कृष्ण जी के केशों की एक लर अस्तुरे से काट ली। और एक-एक केश को एक दूसरे से गाँठ बाँध कर बहुत लम्बा केशतन्तु बना डाला।

'गोपा अब तुम कलसी लेकर यमुना के किनारे चलो। पर कलसी पानी में तब डुबाना जब मैं कहूँ।'

गोपा बिना कुछ कहे वह सहस्र छिद्रों वाली कलसी लेकर यमुना के तट की ओर चल पड़ी। उसके पीछे श्री कृष्ण जी के केशों से निर्मित तन्तु लिये हुये वैद्यराज चले और आगे क्या होता है यह देखने को सारा ब्रज ही उमड़ पड़ा।

वैद्यराज ने एक नौका मँगवाई। उस पर चढ़ कर वे यमुना के उस पार गये। वहाँ पहुँच कर एक खूँटी गाड़ दी और केश तन्तु का एक सिरा उससे बाँध दिया फिर वे वापस आये। केश-तन्तु का दूसरा सिरा वृन्दावन की ओर दूसरी खूँटी से बाँधा। अब उन्होंने गोपा से कहा—'गोपा! तुम ब्रज प्रसिद्ध सती हो।

अब तुम कलसी लेकर इस केशतन्तु पर पग रखती हुई बीच यमुना से जल भर लाकर जल्दी-जल्दी वापस आओ। उस जल का मुख पर छींटा मारने से श्रीकृष्ण चन्द्र तुरन्त अच्छे हो जावेंगे।'

गोपा गर्वोल्लास में हाथ में कलसी लिये केशतन्तु की ओर बढ़ी। परन्तु जैसे ही उसने केशतन्तु पर पैर रखा वह छिन्न-भिन्न हो गया। गोपा कलसी समेत यमुना जल में जा गिरी।

गोपा किसी प्रकार पानी के बाहर निकाली गई, क्रोध और ग्लानि से उसका मुख लाल था। साथ ही लज्जा से नत भी था। उसने कहा—'वैद्यराज! इस विधि से कोई स्त्री जल नहीं ला सकती, चाहे कितनी ही बड़ी सती वह क्यों न हो। पार्वती और सावित्री भी होतीं तो यह चमत्कार न दिखा सकतीं।'

वैद्यराज ने केवल इतना ही कहा—'गोपा सती की महिमा तुम नहीं जानती हो।'

नन्दरानी ने कातर वाणी से कहा—'वैद्यराज! क्या जिस प्रकार सहस्रों छिद्रों वाली कलसी में केशतन्तु पर चढ़ कर यमुना जल लाना असम्भव है उसी प्रकार मेरे पुत्र का प्राण बचना भी असम्भव है। तब यह नाटक आपने क्यों रचाया। यह सहज-सी बात सहज ढङ्ग से क्यों न कह दिया।'

ब्रज बनिताओं में राधा भी थीं। नत मस्तक, हतबुद्धि रायण ने उन्हें पुकार कर कहा—'वृषभानु नन्दिनी एक बार तुम तो प्रयत्न करो।'

'मैं ?' साश्चर्य राधा बोलीं—'मैं ! जिसके कारण कृष्ण को कलङ्क लगा और उनकी यह दशा हुई ।'

'हाँ तुम ?' शायद तुम्हारा कलङ्क मिटाने के लिए ही कृष्ण जी बीमार पड़े हैं और वैद्यराज ने यह उपचार निश्चित किया है ?'

केशतन्तु पुनः जोड़ा गया । राधा सहस्र छिद्री वह कलसी लेकर चलीं । कलसी उठाते ही उन्हें लगा कि उनका शरीर शीतल पड़ा जा रहा है । और यह क्या ? उन्होंने जब केशतन्तु पर पैर रखा तब जान पड़ा कि केशतन्तु के नीचे पत्थर की शिला है ?'

राधा के तन में नवीन उष्णता आई—'हे भगवान् तुम धन्य हो ।' उनके कण्ठ से मधुर संगीत फूट पड़ा । वे नृत्य करती हुईं केशतन्तु पर बढ़ने लगीं । गोपों के डफ-करताल बज उठे । परन्तु शीत इतना बढ़ा कि गाने वालों के दाँत कटकटाने लगे ।

बात यह हुई कि रायण जो योगी थे, उन्होंने अपने योग-बल से ब्रज की समस्त उष्णता खींच ली थी और यमुना का पानी जम कर बर्फ की शिला बन गया था । उस पर से चढ़ कर राधा के लिए यमुना की बीच धार तक पहुँचना सरल हो गया । परन्तु अब बर्फ की शिला के अन्दर कलसी कैसे जाय ? राधा ने नाच-नाच कर बर्फ को ऊपर की परत पैरों से तोड़ डाली । नीचे

उष्ण यमुना जल लहरा रहा था। उसमें कलसी डुबो कर राधा ने ऊपर उठा लिया। ऊपर आते ही कलसी का सारा जल जम कर बर्फ हो गया। 'हे भगवान् तुम्हारी लीला।' कहती हुई राधा उसी प्रकार नृत्य करती हुई वापस आ गयीं। ठंढ के मारे उनसे कलसी नहीं पकड़ी जा रही थी। उनके पांवों के तलवे और अँगुलियाँ रक्त वर्ण हो रही थीं। जान पड़ता था कि वे कट कर गल जायेंगी।

राधा ने कलसी वैद्यराज के सम्मुख रखी। 'यहाँ नहीं इसे वहाँ ले चलो, जहाँ व्रजचन्द्र मूर्छित पड़े हैं।' वैद्यराज ने कहा।

राधा कलसी लेकर चल पड़ी। उनके पीछे वैद्यराज व सब गोप-गोपी चले। ज्यों-ज्यों आगे बढ़े क्रमशः शीत कम होता गया।

वैद्यराज ने कहा—'कलसी को कृष्णचन्द्र के सिर पर से उतारो।'

रायण ने कहा—'वृषभानु नन्दिनी तुम परम सती हो और आदर्श नारी हो। मैं तुम्हारा पति हूँ। मुझसे अधिक तुम्हें कोई दूसरा नहीं जान सकता है। तुम पर कलंक लगाने का अधिकार मेरे सिवा किसी को नहीं है। मैं कहता हूँ तुम निष्कलंक हो। तुम कृष्ण को यमुना जल से नहलाओ।'

राधा ने कांपते हाथों से वह सहस्र छिद्रों वाली कलसी उठाई। श्री कृष्ण जी के ऊपर दोनों हाथों से घुमायी। उसी समय

रायण ने अपने योग-बल से प्रकृति की जो उष्णता खींच ली थी उसे एक दीर्घ निःश्वास के साथ छोड़ दिया। कलसी के अन्दर बर्फ के रूप में स्थित जल उसके सहस्रों रन्ध्रों से बह चला। उसकी मृदु फुहार के साथ ही श्रीकृष्ण जी की मूर्छना जाती रही। वे उठ बैठे।

उसी समय उद्धव ने वहाँ प्रवेश किया। वे बोले, 'गोपा! योग-विद्या का चमत्कार देखा तुमने। इसीलिये मैं चाहता हूँ कि व्रजवासी योग का अभ्यास करें। पर तुम खिन्न न होओ। मैंने तुम्हें जो अभिषाप दिया था उसी के कारण तुम्हें यह अपमान सहना पड़ा।'

८—कृष्ण का मथुरा गमन

श्री कृष्ण जी के एकाएक अच्छा हो जाने पर ब्रज में गोप-गोपी आनन्दोत्सव मना ही रहे थे कि यदुकुल भूषण श्री अक्रूर जी सुन्दर रथ में बैठे हुए नन्द के द्वार पर पधारे। नन्द जी ने उनका समुचित स्वागत किया और इस प्रकार अकस्मात् आने का कारण पूछा। अक्रूर जी ने नन्द जी को मथुरा के महाराज कंस का सन्देश सुनाया और कहा—'हे गोप राज! महाराज कंस ने कार्तिक शुक्ल चतुर्दशी को एक विशाल यज्ञ का अयोजन किया है जिसमें श्री कृष्ण और बलराम सहित आपकी उपस्थिति अनिवार्य है।'

यह सुनते ही नन्द जी बड़े सोच में पड़ गये। वे जानते थे कि कृष्ण पर कंस की कुदृष्टि है और यह आयोजन उसने अवश्य ही उनका वध करने के लिये किया है। परन्तु प्रगट रूप से उन्होंने इतना ही कहा—'अभी-अभी तो वे भीषण बीमारी से अच्छे हुए हैं। मैं तो गोप सरदारों के साथ महाराज कंस की सेवा में उपस्थित रहूँगा परन्तु बालक......!'

बीच ही में बात काट कर अक्रूर ने कहा 'नन्द जी कृष्ण की ख्याति कंस के कानों तक पहुँच चुकी है। इस छोटी उम्र में

इन्होंने किस प्रकार बड़े-बड़े राक्षसों को मल्य-युद्ध में पटका है यह कंस को विदित हो चुका है। इसी ध्येय से उन्होंने सम्पूर्ण भारत के मल्ल-विद्या विशारदों को आमन्त्रित किया है और कृष्ण का उनके साथ अपनी आँखों से युद्ध देखना चाहते हैं। महाराज कंस की आज्ञा है कि तुम श्री कृष्ण व बलराम को अपने साथ ही रथ पर बैठाल कर लेते आना। नन्द जी आदि पीछे आते रहेंगे।'

कंस की यह आज्ञा नन्द को अपने सम्मुख साक्षात् मौत की तरह खड़ी हुई प्रतीत होने लगी। उनकी घिग्घी बँध गई। सम्पूर्ण शरीर कम्पायमान हो गया। बड़ी मुश्किल से उनके मुँह से इतना ही निकल पाया 'अक्रूर जी आज तो विश्राम कीजिये। कल प्रातःकाल।'

'अच्छी बात है।' अक्रूर ने रथ से घोड़ों को खुलवा दिया। और नन्द-महल के अतिथि-कक्ष में विश्राम करने चले गये।

अक्रूर से छुट्टी पाते ही नन्द जी ने एक क्षण भी गँवाना उचित न समझा। वे सीधा वृषभानु से मिलने बरसाना पहुँचे और वहीं समस्त गोप-गोपियों को बुला कर उनके सामने अपने मन की यह व्यथा रखी और सबकी राय जानने को उत्सुक हुए। सब इसी निर्णय पर पहुँचे कि यह अवश्य कृष्ण का वध करने की चाल है। पर किया क्या जाय ?

राधा और कृष्ण वन में उस समय भी गोप-गोपियों की टुकड़ियाँ बनाये मथुरा में गोपियों का दधि-माखन बेचने जाना

रोके हुए थे। उनके विश्वासी सखाओं को भेज कर नन्द ने उन्हें वृषभानु के घर पर बुलाया और सब हाल कह सुनाया।

कृष्ण जी मुस्कराये। बोले—'पिता जी हमारा नहीं कंस का काल आ पहुँचा है। आप चिन्ता न करें। हमें जाने दें।'

श्री कृष्ण जी ने यह बात इतने विश्वास से कही कि नन्द का भय जाता रहा और उनमें विचार व विवेक की शक्ति पैदा हुई। फिर भी उन्होंने कहा—'बेटा तुम अकेले उन मत्त गयन्द सरीखे पहलवानों से कैसे लड़ोगे?'

'अकेले क्यों?' हम समस्त गोप गण चलेंगे। जैसे हम सब मिल कर इन्द्र से लड़े, जैसे हम सब ने मिल कर कालिया को मारा वैसे ही कंस को भी मारेंगे। कंस को मारने का यह अच्छा अवसर है। कल ही तैयारी करें। आप कुछ भी चिन्ता न करें।

कृष्ण जी ने उस छोटी अवस्था में ही इतने चमत्कार दिखाये थे कि उनकी बातों पर नन्द को तनिक भी अविश्वास न हुआ। उन्होंने तुरन्त ही वहाँ से लौट कर अक्रूर से कहा—'हम गोपों के पास सिवाय दूध-दधि के क्या है? सो हम सब घड़ों से भरे दूध-दधि लेकर महाराज कंस को भेंट देने के लिये चलेगें।'

'बहुत ठीक सोचा है आपने नन्द जी।' कहते हुए अक्रूर कुटिलता पूर्वक मुस्कराया।

इधर नन्द और अक्रूर की ये बातें हो रही थीं उधर कृष्ण की अति सुरीली वंशी बज उठी।

'आह! कितनी मोहक तान है!' अक्रूर ने पूछा—'यह वंशी कृष्ण जी बजा रहे हैं?'

'हाँ! शायद गायों को इकट्ठा कर रहे हैं। मैंने उन्हें आज जल्दी लौटने का सन्देश भिजवा दिया है।'

परन्तु यह वंशी ध्वनि गायों को एकत्रित करने के लिये न थी। गोप-गोपियों के लिये सघन वंशीवट के नीचे जमा होने का आह्वान थी।

दूसरे ही क्षण वहाँ गोप-गोपी जमा होकर कृष्ण की बात सुनने में तल्लीन हो गये। कृष्ण ने कहा—'प्रगट रूप से तो हम कंस की मल्लशाला में दर्शक व विशेष रूप से निमन्त्रित अतिथि के रूप में चल रहे हैं। परन्तु वास्तव में हम कंस से लड़ने चल रहे हैं। हमें इस तरह सब काम करना है कि मल्लशाला आरम्भ होते ही हमारा उस पर अधिकार हो जाय और हम जो चाहें पूर्ण स्वतन्त्रा के साथ कर सकें।'

'आपने क्या सोचा है?' एक बोला। मैंने सोचा है कि मथुरावासियों के पहुँचने से पहले ही हम सब मथुरावासी बन कर सब स्थान घेर लें और मल्लशाला पर अधिकार कर लें।

'यह कैसे होगा?' एक गोप बोला।

'तुम सब इसी दम चल पड़ो। मथुरा पहुँचने पर छोटी-छोटी टुकड़ियों में धोबियों का घर घेर लो। मल्लशाला के लिये वहाँ मथुरावासियों के कपड़े धुलने के लिये पहुँचे होंगे। उन कपड़ों को छीन कर और उन्हें पहन कर सब अलग-अलग रास्तों से मल्लशाला में फैल जाओ। फिर क्या करना होगा यह मैं उचित समय संकेत कर दूँगा।'

मैं कल अक्रूर के रथ पर आऊँगा।

इसी दम सब गोप चल पड़े। अब वहाँ रह गईं केवल गोपियाँ और राधा। सबकी आँखों में बड़े-बड़े आँसू थे। राधा तो आँसुओं से स्नात हो रही थीं।

कृष्ण जी उनके निकट पहुँचे—'राधा यह आँसू वहाने का अवसर नहीं है।'

राधा बोलीं—'ये दुःख, शोक या बिरह के आँसू नहीं हैं जो रोके जा सकें। ये तो हर्ष के आँसू हैं जो रोकने से नहीं रुकते। हम गोपियों को हर्ष है कि आप मथुरा कंस को मारने जा रहे हैं। यह हम सब के लिये गर्व की बात है। ये आँसू आपकी और गोपों की भुजाओं में बल भरें जिससे आप सब कंस को मार सकें।'

राधा के मुख से यह सुनते ही कृष्ण जी की आँखों में भी आँसू आ गये। वे कहने लगे—'राधा तुम धन्य हो! गोपियो तुम धन्य हो!'

संध्या होते ही वंशीवट के नीचे असाधारण रूप से कृष्ण की वन्शी बज उठी। मधुर संगीत दिग-दिगन्त में व्याप्त हो उठा। बीच में राधा कृष्ण थे और चारों ओर से सैकड़ों गोपियाँ। सङ्गीत की ताल के साथ सैकड़ों गोपियों के घुँघरू-वेष्टित पैर एक साथ भूमि पर पड़ते थे जिससे इतने जोर की झम की आवाज होती थी कि कंस अपने महल में चौंक-चौंक उठता था। यह युद्ध का नृत्य और सङ्गीत था। इसके सहारे गोप गण मस्त झूमते हुए मथुरा की ओर बढ़े चले जा रहे थे ठीक वैसे ही जैसे पुरवैया के झोंकों पर बादलों के दल बढ़ते चले जाते हैं।

इधर नन्द के महल में इस युद्ध-सङ्गीत से अक्रूर की निद्रा भी भंग हो-हो उठती थी। उन्हें लगता था जैसे गोपों की सेना मथुरा पर आक्रमण करने को उद्यत हो रही है।

वे समय से पहले ही उठ बैठे। रथ तैयार करवाया और बाहर निकले कि देखें यह क्या मामला है। वे वन्शीवट की ओर रथ ले गये। उस समय पूर्व में लाली फूट रही थी। निशा-नाथ की आभा क्षीण पड़ गई थी पर गोपियाँ कृष्ण की वन्शी ध्वनि के साथ जोर-जोर से पैर पटके जा रही थीं, जैसे वे शत्रुओं की छातियों पर पैर पटक रही हों।

उस अद्भुत युद्ध नृत्य को देख कर अक्रूर को लगा कि कंस के लिये इस कृष्ण को मारना बहुत ही कठिन होगा।

अक्रूर का आभास पाकर कृष्ण ने वंशी बजाना बन्द कर दिया। उसके साथ ही नृत्य भी बन्द हो गया। तब श्री कृष्ण

जी आगे बढ़ कर बोले—'अक्रूर जी आप हमें लेने आ गये क्या?'

अक्रूर से कुछ कहते न बना।

'अच्छा तो महल की ओर चलिये। हम आये।' अक्रूर ने रथ ला कर नन्द के द्वार पर खड़ा कर दिया। कृष्ण समेत सब गोपियाँ भी वहाँ पहुँच गयीं।

थोड़ी ही देर में श्री कृष्ण व बलराम तैयार हो कर आ गये और रथ में बैठ गये। आँखों में अश्रु की लड़ियाँ संजोए और होठों पर मुस्कान बिखेरती यशोदा ने आगे बढ़ कर कृष्ण बलराम का मुख चूमा और उन्हें विदा दी।

आगे-आगे अक्रूर का रथ चला। पीछे नन्द अपने रथ पर चले। दूध-दही के मटकों से भरे छकड़े पर गोप गण कल शाम ही से जा रहे थे।

इस प्रकार कृष्ण बलराम को विदा कर गोपियाँ, राधा और यशोदा सहित नन्द भवन में आईं। अब तक तो वे हर्ष के आँसू बहा रही थीं परन्तु अब उन्हें लगा कि जैसे ब्रजचन्द्र कृष्ण ब्रज को सूना करके चले गए हैं। वे वियोग की व्यथा से व्यथित हो गईं और एक दूसरी को समझाने व विलाप करने लगीं।

९—कंस वध

कंस की मल्लशाला देखने ही योग्य थी। विशाल हरित बांसों से आवृत अर्द्धवित्ताकार उस लता-पत्र विनिर्मित सभा-भवन के बीचो-बीच में लगभग ५० गज का चौकोर अखाड़ा था जो चारों ओर से योद्धाओं के लड़ने के लिये छोड़ दिया गया था। पूर्व की ओर व्यासाकार रेखा पर कंस के बैठने के लिये उच्च सिंहासन बनाया गया था। सिंहासन के पूर्व लता-पत्र विनि-र्मित द्वार था जिसके भीतर से कंस के हाथी पर बैठकर आने का मार्ग था। अखाड़े के तीन ओर वृत्ताकार मार्ग था जिस पर मल्ल-शाला के नियमों की घोषणा करने वाले कर्मचारी हाथी पर बैठ कर घूम-फिर सकते थे। कंस के आसन से ठीक पश्चिम की ओर दूसरा वैसा ही विशाल द्वार था जिससे होकर दर्शकगण आ सकते थे।

इस द्वार पर कंस ने अपना कुवलिया नामक उनमत्त हाथी बँधवा दिया था और महावतों को आदेश दिया था कि जैसे ही कृष्ण, बलराम इस द्वार से प्रवेश करने लगें यह हाथी बन्धन मुक्त कर दिया जाय, जिससे उनको कुचल डाले।

अखाड़े और कंस के सिंहासन के बीच में रङ्गमञ्च था जिस

पर सङ्गीत व नृत्यकला में दक्ष यक्ष और यक्ष-सुन्दरियाँ अपने नृत्य और संगीत से मल्ल युद्धों के बीच में सभा-भवन का मनोरञ्जन करने के लिये उद्यत थीं। रङ्गमञ्च के दोनों ओर कंस के सरदारों और प्रमुख दरबारियों के बैठने का स्थान था।

डंकों और तुड़ही के तुमुलनाद के साथ कंस ने मल्ल-शाला में प्रवेश किया। उपस्थित जनों ने नत-मस्तक और करबद्ध उसका स्वागत किया। ब्राह्मणों ने शङ्ख बजा कर उच्च स्वर से उसकी प्रशस्ति के श्लोक पढ़े।

हाथी सिंहासन के निकट खड़ा किया गया। और वह ऊपर ही ऊपर सिंहासन के मञ्च पर जा खड़ा हुआ। एक बार फिर शङ्ख घड़ियाल बज उठे। कंस मूँछ मरोड़ता हुआ अपने सिंहासन पर विराजमान हो गया। इसके पश्चात् उसने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई कि कौन सरदार व दरबारी कहाँ बैठे हैं। अनेक सरदारों को उसने केवल उनकी पोशाक से पहचाना, उनकी मुखाकृतियाँ व चितवन उसे सर्वथा भिन्न प्रतीत हुईं।

बात यह हुई थी कि अनेक गोप धोबियों से उनके धवल वस्त्र छीन कर और स्वतः धारण कर उनके आसनों पर आ विराजमान हुए थे। अनेक गोपों ने सभा-मण्डप की रक्षा करने वाले प्रहरियों की पोशाकें धारण कर ली थीं और वे यादव वेशधारी गोपों को तो अन्दर जाने देते थे परन्तु वास्तविक दरबारियों तथा कंस के भक्त मथुरावासियों को बाहर ही रोक रहे थे।

अपने दरबारियों और प्रहरियों की बदली हुई आकृतिया देख कर कंस कुछ शंकित हुआ और उसने अपने अंग रक्षकों से पूछा कि क्या वे उन्हें पहचानते हैं। बुद्धिहीन अंग-रक्षक इस भेद को न समझ सके और वे पोशाकों के सहारे उनका परिचय देने लगे। कंस ने समझा कदाचित् विशेष पोशाकों के कारण ही उनकी आकृतियाँ भिन्न प्रतीत होती हैं। वास्तव में वे वही हैं। उसे तनिक भी इस बात का भान न हुआ था कि गोप गण उसके सभा-भवन में छद्म वेष धर कर भर गये हैं।

तभी चाणूर के आने की सूचना प्रसारित की गई। कंस ने सामने देखा। मत्त गयन्द-सा उसकी मल्लशाला का प्रमुख पहलवान चाणूर चला आ रहा था। बज्र के समान उसकी छाती, लौह दण्डों के समान विशाल भुजाएँ! हाथी के समान शरीर व मतवाली चाल, दो चिताओं के समान क्रोध से जलती हुई आँखें। जब वह आगे बढ़ा तब जान पड़ा जैसे धरती डगमगा रही हो। उसकी डरावनी आकृति देख कर गोपगण सहम गये। चाणूर के पश्चात् उसी प्रकार रङ्गस्थल को डगमगाते हुए मुष्टिक ने प्रवेश किया।

उसके पश्चात् कृष्ण और बलराम के आने की सूचना प्रसारित की गई। जैसे ही ये दोनों भाई प्रवेश द्वार पर पहुँचे कुवलिया छोड़ दिया गया। उसने चिंघाड़ कर दोनों भाइयों को अपनी सूँड़ की लपेट में आबद्ध कर लिया और सूँड़ को ऊपर उठाया कि उन्हें पटक कर पैरों तले कुचल डाले। तभी उस

मत्तगयन्द का एक दाँत उखाड़ कर श्री कृष्ण ने उसकी एक आँख में भोंक दिया और उसका दूसरा दाँत उखाड़ कर श्री बलराम ने उसकी आँख में भोंक दिया। हाथी की सूँड़ की पकड़ धीमी पड़ गई। वह उन्हें वहीं छोड़ कर चिंघाड़ कर भागा।

दोनों भाई उस मतवाले हाथी का ताजे रक्त से सना दाँत अपने हाथों में लिये हुए आगे बढ़े। उनकी इस वीरता पर कंस की ओर से उन्हें बधाई दी गई और वे चाणूर और मुष्टिक के जोड़ के पहलवान घोषित किये गये। लोगों ने देखा कि कहाँ चाणूर और मुष्टिक और कहाँ ये कोमल वपु-बालक। परन्तु कंस के डर के कारण किसी ने कुछ न कहा।

कंस की आज्ञा से दोनों भाई अखाड़े के बीच में खड़े किये गये और उनके सामने चाणूर और मुष्टिक आ खड़े हुए। एका-एक कृष्ण का ध्यान अखाड़े और कंस के सिंहासन के बीच में निर्मित मञ्च पर गया। अरे! यह क्या? यक्ष सुन्दरियों की जगह श्री राधा भी अपनी कतिपय सहेलियों के साथ कृष्ण की सहायता को विद्यमान थीं।

श्री राधा को रङ्गमञ्च पर देखा तो हाथ में हाथी का वह तुरन्त उखाड़ा हुआ दाँत लिये हुए श्री कृष्ण जी एक छलांग मार कर उस मञ्च पर जा पहुँचे। राधा उठ खड़ी हुई। बने यक्षों ने अपने वाद्ययन्त्र सम्भाले और अद्भुत नृत्य सङ्गीत आरम्भ हो गया।

'यह स्त्री जो कृष्ण के साथ नाच रही है। कौन है?' कंस ने रङ्गमञ्च के सूत्रधार से पूछा। परन्तु उसने इस सम्बन्ध में कुछ भी बताने में असमर्थता प्रकट की। तब कंस ने बिगड़ कर आदेश दिया—'इन सब यक्षों और यक्ष-नारियों को सभा-भवन के बाहर निकाल दो।' परन्तु उसके आदेश का पालन करने वाला जैसे वहाँ कोई न था। राधा-कृष्ण का नाच इस प्रकार स्वाधीनता पूर्वक प्रारम्भ हो गया जैसे वे वृन्दावन में वंशीवट के नीचे हों और कंस आदि वहाँ बैठे हुए लोग पेड़-पौधे से कोई अधिक महत्व न रखते हों।

'चाणूर! मुष्टिक!! इस नचनिये को अखाड़े के भीतर खींच कर एक पटकना दो?' कंस चिल्लाया।

चाणूर-मुष्टिक दोनों आगे बढ़े। परन्तु कृष्ण ने अद्भुत फुर्ती दिखलाई। एक ताल के साथ वे राधा के बगल में जा खड़े होते थे और दूसरी ताल के साथ कभी चाणूर और कभी मुष्टिक को इस प्रकार धक्का देते थे कि दोनों गिर-गिर पड़ते थे।

एक साथ ही नृत्य और युद्ध का यह अच्छा प्रदर्शन था। चाणूर और मुष्टिक अधमरे से हो कर अखाड़े में लोट रहे और चारों ओर से छद्मवेषी गोपगण कृष्ण को वाह-वाह कहने लगे। अब तो कंस से न रहा गया। उसने उच्च स्वर से कृष्ण को अखाड़े के बाहर जाने का आदेश दिया। परन्तु उस आदेश के

उत्तर में कृष्ण जी उछल कर उसके सिंहासन पर जा पहुँचे और वहीं से उसकी चोटी पकड़ कर उसे अखाड़े में फेंका और कभी रङ्गमञ्च पर कभी अखाड़े में उसे पटकना दे-देकर उसकी छाती पर तब तक नृत्य करते रहे जब तक वह मर नहीं गया।

कंस के मरते ही सभा-मंडप श्रीकृष्ण जी की जय-जयकार से गूँज उठा। तुरन्त ही श्रीकृष्ण जी के आदेश से उग्रसेन बन्दी-जगह से लाये गये और कस के स्थान पर उस उच्च आसन पर बैठाये गये और वे राजा घोषित हुए। उसी समय कंस के कारागार से मुक्त होकर वसुदेव और देवकी भी वहाँ आ गये। नन्द आदि गोप वहाँ पहले ही से उपस्थित थे। देवकी बार-बार कृष्ण का मुख चूमने और उनके मस्तक व पीठ पर हाथ फेरने लगीं और नन्द और वसुदेव एक दूसरे को भेंटने लगे।

१०—द्वारकापुरी का निर्माण

कंस-वध के पश्चात् उसके पिता उग्रसेन को पुनः मथुरा का राजा बना कर श्री कृष्ण जो गोपों के साथ व्रज को लौटने ही वाले थे कि उन्हें समाचार मिला कि परम शक्तिशाली मगध नरेश जरासन्ध की २३ अक्षौहिणी सेना ने आकर चारों तरफ से मथुरा को घेर लिया है।

जरासन्ध ने अपनी जुड़वाँ पुत्रियाँ, अस्ति और प्राप्ति का, कंस के साथ विवाह किया था। अतएव कृष्ण और समस्त यदु-वंशियों का विनाश करने पर वह तुल गया।

तब मथुरा एक विशाल दुर्ग के समान था। नगर के गिर्द एक ऊँची और सुदृढ़ दीवाल थी और दीवाल के गिर्द एक चौड़ी नहर थी जो यमुना से मिली हुई थी। यों तो यह नहर सूखी रहती थी परन्तु युद्ध काल में खोल दी जाती थी जिससे यमुना का पानी इसमें भर जाता था और आक्रमणकारी दुर्ग के अन्दर प्रवेश न करते थे। जो करने की इच्छा से बढ़ते थे उन्हें यदुवंशी परकोटों पर चढ़ कर दीवाल में बने झरोखों से वाण-बद्ध कर देते थे।

इस प्रकार यदुवंशियों और जरासन्ध की सेना में कई दिन तक युद्ध चलता रहा और जरासन्ध यदुवंशियों का कुछ बिगाड़ न सका। परन्तु मथुरा दुर्ग जाने वाले समस्त मार्गों को उसने सफलता पूर्वक बन्द कर दिया था। बाहर से रसद पानी न पहुँच सकने के कारण मथुरा नगर के भीतर खाद्य-सामग्री घटने लगी और श्री कृष्ण जी को निश्चय हो गया कि इस प्रकार जरासन्ध कुछ दिन और घेरा डाले पड़ा रहा तब लोग भूखों मरने लगेंगे। तब श्री कृष्ण जी ने जरासन्ध से लड़ते-लड़ते एक ऐसे दुर्ग के निर्माण का निश्चय किया कि जिसके समस्त मार्गों को कोई शत्रु बन्द न कर सके और जो अजेय हो।

ऐसा दुर्ग वही हो सकता है जो यमुना जैसी नदी नहीं, विशाल समुद्र के अथाह जल से घिरा हो और जो स्थल की विपरीत दिशा से जलयानों द्वारा आवागमन के लिये सुरक्षित हो।

तभी श्री कृष्ण जी की कल्पना-पट पर समुद्र के बीच में द्वारकापुरी का चित्र खचित हो उठा और उन्होंने वह दुर्ग बना कर जरासन्ध से लड़ने का निश्चय किया।

उधर जरासन्ध ने यह घोषणा कर दी थी कि समस्त मथुरा-वासियों से उसका बैर नहीं है। वह तो केवल कृष्ण और यदुवंशियों का विनाश चाहता है। अतएव कृष्ण और यदुवंशियों को दुर्ग के बाहर निकल आना चाहिए जिसमें उनके कारण समस्त प्रजाजनों का हनन न हो।

श्री कृष्ण जी ने जरासन्ध की यह ललकार स्वीकार की। परन्तु जरासन्ध से कहलवाया कि वह अपनी सेना कम से कम इतनी दूर हटा ले जाय कि नगर के निवासियों को युद्ध के कारण हानि न पहुँचे। जरासन्ध यह मान गया और जैसे ही उस की सेना कुछ पीछे हटी दुर्ग के चारों तरफ के द्वार खोल दिये गये।

श्रीकृष्ण जी वीर यदुवंशियों के साथ दुर्ग के बाहर निकले और उसकी सेना को चीरते हुए अज्ञात दिशा को निकल गये।

जरासन्ध ने मथुरा में प्रवेश किया। परन्तु विजयी अपने को वह कैसे कहता ? कृष्ण और सभी यदुवन्शी सुरक्षित निकल गये थे।

जरासन्ध की सेना ने उनका पीछा किया परन्तु यदुवन्शी एक सघन वन में छिप गये। वन के अन्दर से युद्ध-कला में वे बहुत निपुण थे। उस वन के अन्दर यदुवन्शियों की मार से जरासन्ध की सेना घबरा उठी और वह एक प्रकार से भाग खड़ी हुई।

कृष्ण पुनः मथुरा को लौट आये और जरासन्ध ने पुनः इसी प्रकार बाहर निकलकर युद्ध किया। इस प्रकार जरासन्ध और कृष्ण के बीच अठारह युद्ध हुए। सभी युद्धों में जरासन्ध का पराभव हुआ; परन्तु उसकी शक्ति क्षीण न हुई। यह सही है कि वह कृष्ण या यदुवन्शियों का कुछ बिगाड़ न सका परन्तु

यदुवन्शी भी उसे हरा न सके और प्रत्येक युद्ध में उन्हें कुछ न कुछ पीछे ही हटना पड़ा। इस बीच में समुद्र के अन्दर द्वारका-दुर्ग-निर्मित हो गया। इसी दुर्ग से सुरक्षित अजेय द्वारकापुरी में कृष्ण जी जरासन्ध आदि राजाओं की उपस्थिति में रुक्मिणी का हरण करके ले गये।

स्थल की सीमा तक जरासन्ध ने कृष्ण का पीछा किया, परन्तु जब उसने स्थल की सीमा पर पहुँच कर भयावनी लहरों के पार द्वारकापुरी की उच्च अट्टालिकाओं और ध्वजों को लहराते हुए देखा तब उसका साहस छूट गया। इन लहरों को पार करके द्वारका के अजेय दुर्ग पर काबू पाना उसे असम्भव प्रतीत हुआ और वह निराश होकर लौट आया।

द्वारकापुरी में रहते हुये श्री कृष्ण जी ने भारत की तत्कालीन राजनीति को बहुत ही प्रभावित किया। उन्होंने न्याय के पक्ष वाले बलहीन राजाओं की सहायता की और अन्याय के पथ पर अग्रसर होने वाले शक्तिशाली नरेशों का दमन किया। यह सब कैसे किया यह कथा महाभारत और पुराणों में वर्णित है और इस लघु उपन्यास में उनका वर्णन अभीष्ट भी नहीं है। अतएव हम पुनः ब्रज की ओर आते हैं।

जिस दिन श्री कृष्ण जी ब्रज से मथुरा आने लगे थे उसी दिन श्री राधारानी और गोप-गोपियों के मन में यह आशङ्का

उदित हो गई थी कि अब शायद ही श्री कृष्ण जी लौट कर ब्रज भूमि में आवें।

जरासन्ध के आक्रमणों से उन्हें बार-बार मथुरा छोड़ना पड़ा और जब द्वारकापुरी के निर्मित हो जाने से श्री कृष्ण जी ने समस्त गोप-गोपियों से मथुरा और ब्रज छोड़ कर द्वारकापुरी में चलकर बसने का आग्रह किया तब गोपों ने कहा कि यह सुन्दर देश, जो यमुना के नील सलिल से सिञ्चित है, जो रवि, शशि और तारों के प्रकाश से दीपित है, जो लता, वृक्षादि नाना वनस्पतियों से हरित-भरित है, जो गौओं से पूरित और खगों से कूञ्जित है, जो हमारी जन्मभूमि है, उसे छोड़ कर हम अन्य कहीं नहीं जा सकते हैं।

'और यदि कोई अन्यायी राजा कंस व जरासन्ध की भांति तुम्हें सताये तो?'

'तो हमारे बीच में नये कृष्ण का जन्म होगा। हम उसका विनाश कर देंगे। हमारी मर्जी के विरुद्ध जो हम पर शासन करना चाहेगा उसका सिंहासन ध्वस्त हो जायगा और वह विनाश को प्राप्त होगा।'

कृष्ण जी ने बहुत कहा परन्तु गो सेवा में रत शान्ति प्रिय गोप ब्रज छोड़ने को तैयार न हुए। तब वे केवल युद्ध प्रिय यदु-वंशियों को लेकर द्वारका जाने को उद्धत हुए।

राधा अपनी सखियों समेत उन्हें विदा देने आयीं। उन सबके नेत्र जल-प्लावित थे। इससे पहले उन्होंने कृष्ण जी को व्रज से मथुरा को विदा किया था। मथुरा व्रज के बहुत ही पास था परन्तु तब भी वे कृष्ण के वियोग से अति दुखी हो उठी थीं और अब तो कृष्ण दूर बहुत दूर द्वारका जा रहे थे जहाँ से वे शत्रु से अच्छी तरह युद्ध कर सकते थे। यह सदा के लिये वियोग था। श्री कृष्ण जी ने अन्त में राधा से विदा ली। कहा – 'हे व्रज वनिते! अब तक हम तुम एक मार्ग के पथिक थे। आज से हमारा तुम्हारा मार्ग पृथक हो रहा है। मुझे विश्वास है मैं अपने मार्ग पर निर्विघ्न चल सकूँगा। परन्तु मानवों में जिस प्रकार युद्ध की लिप्सा बढ़ रही है उसको देखते हुए मुझे लगता है कि शान्ति के पथ पर तुम निर्विघ्न चल न सकोगी? मुझे इसकी चिन्ता रहेगी।'

'मथुरा और व्रज में कोई भी राजा राज करे, उसे कृषि और गोपालन के कार्य में बाधा देने का साहस न होगा। क्योंकि इन्हीं व्यवसायों से यह राज्य स्थिर रहेगा। इससे हमें चिन्ता नहीं है।'

'और यदि कोई कंस-सा मूढ़ बाधा उपस्थित करे तो?'

'तो हे द्वारकाधीश! क्या आप वहाँ से हमारी रक्षा न कर सकेंगे? यदि न कर सके तो द्वारकापुरी के निर्माण का प्रयोजन ही क्या रहा?'

श्री कृष्ण जी निरुत्तर हो गये। वे रथ पर सवार हो गये। गोप गोपियों ने उन्हें अश्रु-लड़ियों की मालाएँ पहना कर विदा किया और उसी घड़ी से उन्हें ब्रज सूना-सूना लगने लगा।

कृष्ण को विदा करने के बाद राधा को अपने पति रायण का स्मरण हो आया। ओह! उन्होंने अपने पति की कुछ भी सेवा न की, उन्होंने सोचा ? वे भागी-भागी उद्धव के आश्रम में गयीं जहाँ रायण योगाभ्यास में लीन थे। कृष्ण जरासन्ध के युद्ध से पहले जब वे इस आश्रम में आई थीं तब यह अत्यन्त रमणीक था। परन्तु अब तो एक दम उजाड़ था। यत्र-तत्र तपस्वी साधुओं के शरीर कटे पड़े थे और उनके मृत शरीरों से दुर्गन्धि उठ रही थी और दिन दोपहर को शृगाल और गीदड़ उस तपोवन में विचरण कर रहे थे।

राधा ने इन मृतकों में रायण को ढूँढ़ना प्रारम्भ किया परन्तु कुछ पता न चला। इधर-इधर भटकते उन्हें एक गुफा में एक जीवित ऋषि दीख पड़ा।

'हे सुन्दरि! तुम कौन हो?' बड़ा जोर लगा कर वह बोला।

'मैं राधा हूँ! अपने पति रायण को खोज रही हूँ।'

'राधा! रायण।' जैसे वह कोई अतीत की बात का स्मरण करने लगा। फिर बोला—'इससे चार गुफाएँ छोड़ कर पांचवीं में

रायण हैं। पर वे योग निद्रा में लीन हैं।' वे कब जागेंगे मैं कह नहीं सकता ?'

'मैं उन्हें जगा सकती हूँ ?'

'क्यों नहीं ?'

'परन्तु कैसे जगाऊँ ?

'यहाँ समाधि में सोने वाले तपस्वियों की देख-भाल के लिये जितने अन्य तपस्वी व ऋषि थे सब को जरासन्ध ने मरवा डाला। केवल उद्धव जो समाधिस्त नहीं थे बच रहे हैं। परन्तु वे कहाँ हैं ? कह नहीं सकता। उसी दिन मेरी योग निद्रा भङ्ग हुई थी परन्तु आश्रम में कोई न रहा जो मुझे शहद चटाता, जल देता, स्नान कराता। अब तो पड़ा-पड़ा मृत्यु का आह्वान कर रहा हूँ। जीने की इच्छा नहीं रही। सुन्दरी तुम जाओ !' अपने पति को देखो ? परन्तु मेरी राय है कि उन्हें जगाने का प्रयास मत करना। क्योंकि तुम्हें वे सब विधियाँ नहीं मालूम होंगी जो योगी को जगाने के बाद उसे जीवित करने में सहायक होती हैं। जगा दोगी तब वे भी मेरी ही तरह कष्ट से मरेंगे।

राधा उस तपस्वी को प्रणाम करके पाँचवीं गुफा में गयीं। गुफा के मुँह पर जाला लगा था उसे हटा कर वे भीतर पहुँचीं। रायण मृतवत् पड़े थे पर उनका शरीर कुछ गर्म था। वे समझ न सकीं कि रायण को कैसे जगावें। दिन भर वे उसी

गुफा के द्वार पर बैठी रहीं कि शायद कोई ऐसा तपस्वी आ जावे जो समाधिस्त योगी की सेवा जानता हो, पर कोई न आया। हाँ गोप गोपिकाएँ उन्हें ढूँढ़ती हुई आयीं। उनमें गोपा भी थी।

रायण की गुफा के द्वार पर शोक से डूबी राधा को बैठी देख कर गोपा बोली—'राधा तुम महारानी हो। स्त्री का जीवन पति-सेवा ही नहीं है, देश और समाज पति से भी बड़ा है। उससे जो समय बचे वही पति और पुत्र-पुत्रियों को मिलना चाहिए।'

गोपा! आज तुम यह कैसी बात कर रही हो? स्त्री के लिये पति ही सर्वस्व है। उसके लिये वही देश है वही समाज? हाय? यह बात मेरी समझ में पहले क्यों न आई? हाय अब मैं क्या करूँ? अपने पति की रक्षा कैसे करूँ?'

उस समय राधा का दु:ख इतना बढ़ा हुआ था कि गोपा ने इस विषय पर विवाद बढ़ाना उचित न समझा।

उद्धव के आश्रम के एक ब्रह्मचारी का पता लगा वह कहने लगा कि समाधिस्त योगी खाट से लगे हुए रोगी के समान होता है। उसका शरीर जड़ हो जाता है। जिस प्रकार रोगी को अच्छा करने के लिये सुयोग्य वैद्यों की आवश्यकता है उसी प्रकार योगी को समाधि से निकलने के बाद योग-विद्या में निपुण सुयोग्य साधकों की आवश्यकता है। अज्ञानी

या अल्पज्ञानी इस काम में हाथ लगाते हैं तो काम बिगड़ जाता है।

मैं महात्मा रायण के शरीर को बिना छेड़े देख भाल की सलाह देता हूँ और ऋषि उद्धव को खोजने जाता हूँ। अब तो वे ही आवें तब रायण के प्राण बच सकते हैं।

समस्त गोपियों ने गुफा के अन्दर जाकर रायण के योग-शिथिल शरीर को देखा, उसे प्रणाम किया और लौट आयीं। गुफा के द्वार पर पहरा बैठाल दिया गया कि कोई हिंसक पशु अन्दर जाकर उस महान् तपस्वी को कोई कष्ट न पहुंचावे और सब व्रज में आकर उत्सुकता के साथ उद्धव के आने की प्रतीक्षा करने लगीं।

११—उद्धव गोपी सम्वाद

ब्रजवासियों के लिए श्री कृष्ण जी अब साधारण मानव ही न रह गये थे। उन्हें वे परमब्रह्म परमेश्वर का साक्षात् अवतार मानने और उनकी पूजा करने लगे। ब्रज के छोटे बच्चों को वे वैसे ही पीताम्बर पहनाते जैसे श्री कृष्ण जी पहनते थे। उनके सिर पर वैसे ही मोर-मुकुट रखते जैसे श्री कृष्ण जी रखते थे। उनके हाथ में वैसे ही वंशी पकड़ाते जैसे श्री कृष्ण जी पकड़ते थे और उन्हें वैसे ही नचाते जैसे श्री कृष्ण जी नाचते थे। इस प्रकार वे श्री कृष्ण जी के वियोग को भुलाने की चेष्टा करते थे। उन्हें सब देवी-देवता भूल गये। याद रह गये कृष्ण ! केवल कृष्ण !!

गाँव-गाँव में रास मंडलियाँ कायम हो गयीं और छोटे-छोटे बच्चे पीताम्बर, मोर-मुकुट से युक्त होकर हाथ में वंशी लेकर कृष्ण बन कर ऊधम मचाने लगे। एक दूसरे के घरों से वे दूध-दही और मक्खन की चोरियाँ करने लगे और तरह-तरह के खेल और नाटक करने लगे। अपने बच्चों को कृष्ण का रूप धारण किये हुए देखते तो माता-पिताओं का उनके प्रति और भी प्रेम उमड़ता और वे इस रूप में उनकी बड़ी से बड़ी शरारतों को क्षमा कर देते।

क्रमशः यह समाचार श्री कृष्ण जी के पास द्वारका पहुँचा। ब्रजवासियों की अपने प्रति इस प्रेम और भक्ति की चर्चा सुन कर उनका हृदय उमड़ आया और उनके नेत्र सजल हो गये। उन्हें वे दिन याद आये जब वे ब्रज के गोप-गोपियों के साथ दिन को गौवें चराते और रातें नृत्य-विनोद में बिताते थे। परन्तु अब वे दिन लौट कर नहीं आ सकते थे, अब उन्होंने भारत भूमि में धर्म की स्थापना और अधर्म का विनाश करने का बीड़ा उठाया था। द्वारकापुरी के सुरक्षित समुद्री दुर्ग में स्वर्ण सिंहासन पर बैठे वे अपनी इसी नीति के सफल प्रसार का स्वप्न देख रहे थे।

परन्तु जब उन्होंने यह सुना कि ब्रजवासियों ने स्वयम् उन्हीं को भगवान मान कर पूजा आरम्भ कर दी है तब उन्हें चिन्ता हुई। उन्हें लगा कि भगवान की उपासना इस प्रकार नहीं हो सकती। परमेश्वर की प्राप्ति तो जीवन युद्ध में सफलता प्राप्त करना ही है। अतएव उन्होंने उद्धव को ब्रजवासियों को समझाने के लिए भेजा।

उद्धव की जीवनादर्श की प्रणाली सर्वथा भिन्न थी। वे योग को ही मोक्ष का साधन मानते थे। अतएव वे ब्रजवासियों को अपना ही उपदेश सुनाने को चल पड़े। उन्हें मार्ग में ही वह ब्रह्मचारी मिल गया जो उन्हें ब्रज से खोजने निकला था। उसने उन्हें बताया कि ब्रज में उनके आश्रम का सर्वनाश हो गया है। यत्र-तत्र तपस्वियों के मृत शरीर पड़े हैं जिन्हें गिद्ध और शृगाल

खा रहे हैं। रायण अपनी गुफा में जीवित हैं और राधा आपकी प्रतीक्षा करती हुई उसके द्वार पर बैठी हैं। ब्रजवासियों में बड़ी निराशा है। जरासन्ध के आक्रमणों से चारों ओर की धरती मे त्राहि-त्राहि मच गई है। गाँव-नगर सब उजड़ गये हैं। कृषि व गोपालन सब काम बन्द पड़े हैं। मथुरा, ब्रज सभी जगह भारी संकट उपस्थित है।

यह सब सुन कर भरे हुए हृदय से उद्धव मथुरा आये और वहाँ एक दिन रह कर ब्रज के अपने आश्रम में गये।

अपने आश्रम का इस प्रकार विनाश देख कर उन्हें बड़ी ग्लानि हुई। जहाँ राधा अपने पति रायण को योग निद्रा से जगाने की प्रतीक्षा में चिन्तित बैठी थीं, वहाँ वे पहुँचने भी न पाये थे कि गोपियों ने उन्हें घेर लिया और कृष्ण जी का कुशल समाचार पूछने लगीं। परन्तु किसी को कोई उत्तर न देकर उद्धव क्षण को समाधिस्त हो गये। अपने मन को एकाग्र करके उन्होंने दिव्य दृष्टि से देखा कि किस प्रकार से जरासंध ने उनके आश्रम का विनाश किया। उन्हें क्रोध आया कि वे उसी समय जरासन्ध को श्राप दें परन्तु तत्काल ही उन्हें विचार आया कि योगी को क्रोध में कोई कार्य नहीं करना चाहिए और मोह से सदा दूर रहना चाहिए। अतएव उन्होंने पुनः साँस खींची और क्षण भर में अपने चित्त को एकाग्र करके वीतराग हो गये।

अब उनका ध्यान सामने गोपियों से घिरी बैठी राधा की ओर गया। राधा और गोपियाँ पहले तो उद्धव के इस विचित्र

योग-साधन से भयभीत-सी होकर आश्चर्य चकित उनकी ओर देखती रहीं। परन्तु जब उन्होंने आँखें खोलीं और गोपियों को लगा कि वे अकुलस्थ हो गये हैं तब वे रायण को योग निद्रा से जगाने और जागने पर उनको उपचार करने की विधि पूछने लगीं।

उद्धव ने संक्षेप में द्वारकापुरी का वर्णन किया और श्री कृष्ण जी के मार्ग को गलत बताते हुए उन सबको योग की दीक्षा लेने की सलाह दी।

गोपियों ने उत्तर दिया कि हमें योगाभ्यास करने की अब आवश्यकता नहीं है, क्योंकि जिस परमात्मा की प्राप्ति के लिए लोग योग का अभ्यास करते हैं वह परमात्मा तो हमें श्री कृष्ण जी के रूप में सहज ही प्राप्त हो गया है। उसको अब हम छोड़ नहीं सकतीं।

तब उद्धव हँसे। कहने लगे 'तुम सब कितनी मूर्ख हो। ब्रह्म असीम है, अनन्त है। श्री कृष्ण का या किसी का भी सीमित और नश्वर शरीर उसका प्रतीक नहीं हो सकता। वह तो शरीर को साधने और मन को एकाग्र करने से ही जाना जा सकता है।'

गोपियों ने कहा—'तुम ब्रह्म को इसी तरह जानो। इसमें हमारी तुम्हारी लड़ाई नहीं है। परन्तु हमें तो वह अपनी सम्पूर्ण असीमता समेटे श्री कृष्ण जी में सिमटा हुआ दिखाई पड़ रहा है अतएव हम तो अब श्री कृष्ण जी की ही पूजा करेंगी। श्री कृष्ण

की पूजा ही ब्रह्म की पूजा है। आँख मूँद कर ध्यान लगा कर जिस ब्रह्म को तुम देखना चाहते हो वह हमें श्री कृष्ण जी के रूप में दिखाई देता है। अतएव उद्धव तुम हमें अब ठगो मत योग की हमें आवश्यता नहीं है!'

यह सुनकर उद्धव बोले—'हे गोपियों! तुम सब जन्म और मरण इन दो बन्धनों से बँधी हो। ये बन्धन जब तक कटेंगे नहीं तुम बार-बार जन्म लेती और मरती रहोगी। योग के द्वारा ही तुम्हारे ये बन्धन कट सकते हैं।'

'कैसे?' एक गोपी बोली।

उद्धव ने कहा—'सुनो! योग के आठ चरण हैं। एक-एक चरण मनुष्य को परमात्मा के निकट ले जाने वाले एक-एक द्वार के समान है। ये आठों द्वार पार करने पर जीव को ब्रह्मानन्द प्राप्त होते हैं और वह ब्रह्म में लीन हो जाता है।'

'क्या आप आठों द्वार प्राप्त करके ब्रह्म को देख आये हैं?'

'क्यों नहीं?'

'तब आप उस ब्रह्मानन्द को छोड़कर हम दुखी मानवों के बीच में क्यों आ जाते हैं? उसी में लीन क्यों नहीं रहते?'

'इसलिए कि मैं चाहता हूँ कि तुम भी उस ब्रह्मानन्द को प्राप्त करो।'

'महाराज आपकी हम पर बड़ी कृपा है। वे आठ द्वार कौन से हैं? जरा बताइये तो?' एक गोपी बोली।

उद्धव कहते गये—'वे हैं, यम, नियम, आसन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा ध्यान और समाधि।'

यम का अर्थ है—ब्रह्मचर्य पूर्वक जीवन बिताना, अहिंसा और सत्य के मार्ग पर चलना। नियम है—शौच, स्नान, स्वाध्याय और ध्यान से तन और मन का बल बढ़ाना जिससे आगे बढ़ने में सहायता मिले। इतनी साधना हो जाने पर ही आसन की ओर कदम बढ़ाना चाहिए। आसन का अर्थ है—शरीर को योगिक व्यायामों से दृढ़ बनाना और प्राणायाम का अर्थ है—आसन से सधे शरीर के अन्दर मन को एकाग्र करना। इसके पश्चात्, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का नम्बर आता है। परन्तु वे योग की कठिन क्रियाएँ हैं। प्रथम चार का पहले तुम सब अभ्यास करो। इस प्रकार क्रमशः योग साधन से जब तुम समाधि में लीन हो जाओगी तब तुम संसारिक बन्धनो से छूट जाओगी और तुम्हें परमात्मा की प्राप्ति होगी।'

'न महाराज! हमसे यह कठिन साधना न होगी। और फिर ब्रह्म में हम इस तरह लीन होंगी तो हमारी गौएँ कौन चरायेगा और हमारे दूध-दधि को कौन धरे-उठायेगा। और रही यम, नियम की बात सो यम, नियम से तो हम रहती ही हैं। और मन भी हमारा श्री कृष्ण जी पर तत्काल एकाग्र हो जाता है। उनकी वंशी ध्वनि हमारे कानों में गूँज रही है, नील नभ यमुना का नील सलिल, ब्रज की नीलिमा मई सघन हरियाली, हमे उनके नील वर्ण का स्मरण दिलाती है। रवि शशि का प्रकाश

हमें उनके पीताम्बर सा फैला दिखाता है। सो महाराज श्री कृष्ण जी का चिन्तन करने में मन जैसा एकाग्र होता है वैसा किसी और प्रकार नहीं हो सकता।'

उद्धव बड़े सोच में पड़ गये। ये गोपियाँ क्या कह रही हैं? उन्हें लगा कि युग बदल रहा है। योग और समाधि के दिन गये। दैनिक कर्म ही आने वाले युग में मनुष्य का सबसे बड़ा योगाभ्यास होगा। इस कर्म-योग की शिक्षा कृष्ण इन्हें दे गये हैं। इसीलिए इन्होंने श्री कृष्ण को ही भगवान मान लिया है।

उन्होंने एकाएक ध्यानावस्थित होकर भविष्य को देखने की चेष्टा की।

तभी वहाँ गोपा आ पहुँची। उन्हें झकझोर कर बोली—'उद्धव! रायण को...।'

'सोने दो।' उद्धव ने डाँट कर कहा—'तुम मूर्खों के बीच में वे जीवित रहकर क्या करेंगे और मैं भी रायण के पास ही समाधिस्त होता हूँ। भागो! भागो! सब यहाँ से। खबरदार जो किसी ने रायण को या मुझको छुआ, और वे वहीं रायण के पास समाधिस्त हो गये।'

उस ब्रह्मचारी ने मिट्टी से गुफा का मुँह बन्द कर दिया और इस प्रकार उद्धव के आश्रम और उनकी योग-विद्या का अन्त हुआ। ब्रज में श्री कृष्ण जी की पूजा और भी जोरों से चल पड़ी।

———

१२—राधा कृष्ण मिलन

जरासन्ध और उसके समस्त सहयोगी और मित्र राजाओं के बीच से श्री कृष्ण जी जब युद्ध करते हुए रुक्मिणी का हरण करके ले गये तब सबने उनकी शक्ति का लोहा मान लिया और उसके पश्चात् समस्त राजे श्री कृष्ण जी का रुख देख कर चलने और परस्पर युद्ध या मैत्री करने लगे। श्री कृष्ण जी के नेतृत्व में यदुवंशियों को सेना अजेय मानी जाने लगी।

ऐसे ही समय में श्री कृष्ण जी ने सूर्य ग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र में राजसी ठाट-बाट के साथ स्नान करने का आयोजन किया। उन दिनों यह प्रथा थी कि जो राजा सर्वोपरि समझा जाता था वही राजसी ठाट के साथ पर्वोपरि तीर्थों में जाकर स्नान कर सकता था; शेष सब साधारण रूप से जाते थे।

संयोग की बात, उसी अवसर पर श्री राधारानी स्नानार्थ कुरुक्षेत्र पधारी थीं। कुरुक्षेत्र के निकट ही सिद्धाश्रम नामक अति रमणीक स्थान में गोपों ने डेरा डाला था। उन्हें क्या पता था कि श्री कृष्ण चन्द्र भी कुरुक्षेत्र में पधार रहे हैं और उनके साथ आने वाली यदुवंशियों की सेना भी उसी स्थान को अपने पड़ाव के लिए चुनेगी।

गोपों और यदुवंशियों में झगड़ा होने लगा। परन्तु गोपों ने उस स्थान को रिक्त न किया और लड़ने पर तैयार हो गए। जब मालूम हुआ कि गोपों का नेतृत्व एक स्त्री कर रही है तब महारानी रुक्मिणी ने युद्ध न करने का आदेश दिया और उनके पास अपनी दूती भेजी।

महारानी रुक्मिणी की दूती ने राधा से भेंट की और कहा कि महारानी जो उन्हें मिलने को बुला रही हैं। राधा ने कहा गोप स्वतंत्र हैं, किसी राजा रानी को नहीं मानते। महारानी रुक्मिणी की हमसे मिलने की इच्छा हो तो स्वयं पधारें, उनके साथ श्री कृष्ण जी भी सादर निमंत्रित हैं ?

'यह कौन स्त्री है जो श्रीकृष्ण जी के प्रताप को नहीं समझती और रुक्मिणी समेत उन्हें मिलने को बुला रही है ?' रुक्मिणी ने सोचा और श्री कृष्ण जी से सब हाल कहा।

श्री कृष्ण जी बोले–'हे रुक्मिणी ! वह जिसने हमको तुमको बुलाया है, विश्व की समस्त स्त्रियों से श्रेष्ठ है। उसका नाम राधा है। चलो अभी उनसे चल कर मिलें।'

'आप चक्रवर्ती सम्राट होकर एक साधारण स्त्री के बुलाने पर उसके द्वार पर जायँगे। इसमें आपकी मर्यादा भंग होती है ?'

मैंने कहा न कि वह संसार की महानतम नारी है ?'

"मुझसे भी महान् जो आपकी पटरानी हूँ ?'

'हाँ।'

'तो क्या आप मुझे यहाँ मेरा अपमान कराने ले आये हैं ?'

'अपमान की तो इसमें कोई बात नहीं ?'

'आपके निकट न हो, परन्तु मैं तो इसमें अपमान समझती हूँ। यदि ऐसा था, तो आपने उसी से ब्याह क्यों न किया ?'

'हे रुक्मिणी !' श्री कृष्ण जी बोले—'अपने मुझसे ब्याह करने के लिये कहा, तब मैं इतना बड़ा युद्ध करके आपको ले आया। परन्तु उसने मुझसे ब्याह करने की कभी इच्छा नहीं की। कभी मुझसे नहीं कहा और मैं कहता तो मर्यादा भंग होती ?'

'हूँ !' रुक्मिणी सोच में पड़ गईं और श्री कृष्ण जी से तरह-तरह के प्रश्न करके राधा के विषय में सब कुछ जान गयीं और बोलीं—अच्छा तो चलिये, मुझे राधा से मिलाइये ?'

उसी समय श्री कृष्ण जी राजसी ठाट-बाट त्याग कर रुक्मिणी समेत श्री राधा से मिलने चल पड़े। राधा के तृण-पल्लव निर्मित डेरे के द्वार पर गोप-गोपियाँ श्रीकृष्ण जी को देखते ही आनन्दोन्मत्त होकर चिल्लाने लगे—'कृष्ण आ गये, कृष्ण आ गये।'

राधा बाहर निकल आयीं। कृष्ण को देखते ही उनके नयनों से अश्रु प्रवाहित हो चला। तभी गोप-गोपियों ने श्री कृष्ण जी को घेर लिया। राधा कृष्ण की जय-घोष से आकाश गूँज उठा। रुक्मिणी को बताने पर, सबने जाना और उनका सत्कार किया।

उस रात जब पूर्णमासी का चन्द्र उदित हुआ और कुरुक्षेत्र के सरोवर में अपना प्रतिबिम्ब डालने लगा तब उसके तट पर गोपों के डफ बज उठे। रास प्रारम्भ हो गया। राधा कृष्ण को बीच में करके गोप-गोपियों ने जब नृत्य आरम्भ किया तब सबेरे ही जाकर विश्राम लिया।

रुक्मिणी राजकुमारी थीं परन्तु राधा एक साधारण गोप-कन्या। रुक्मिणी ने कृष्ण से संरक्षण लिया था और इस कारण प्रतिष्ठित हुई थीं, परन्तु राधा ने कृष्ण से संरक्षण लिया नहीं था, उन्हें संरक्षण दिया था। उनकी रुक्मिणी से अधिक प्रतिष्ठा क्यों न हो? जब तक नृत्य होता रहा, रुक्मिणी यही बिसूरती रहीं।